ge ifFkd gekjk vkj <x

हम पथिक हमारा और ढंग, मेरा औरों का कौन संग।
मैं किसे बताऊँ राह कौन, मेरे दिल की है चाह कौन।
समझेगा मेरी आह कौन, करता किसकी परवाह कौन।
अपनी अपनी बज रही चंग, हम पथिक हमारा और ढंग।।
है वैभव सुख की शान कहीं, है जात देश अभिमान कहीं।
है मति समाज का गान कहीं, स्वारथयुत धर्म विधान कहीं।
सुन सुन के हम हो गये तंग, हम पथिक हमारा और ढंग।।
कोई कुछ ज्ञान सिखाते हैं, कितनी बिधि ध्यान बताते हैं।
पर हम जो रोते गाते हैं, वह बिरले ही लख पाते हैं।
सुन देख हो गये सभी दंग, हम पथिक हमारा और ढंग।।
हम चलना खा ठोकर सीखे, दिल पाना दिल खोकर सीखे।
जो कुछ हँसकर रोकर सीखे, सच्चे आशिक होकर सीखे।
हो गया निराला राग रंग, हम पथिक हमारा और ढंग।।
हम जंगल में हैं या घर में, दिल लगा एक उस दिलवर में।
वह मेरे बाहर भीतर है, व्यापक हर शै में हर दर में है।
बस रही मिलन की ही उमंग, हम पथिक हमारा और ढंग।।
हम भला बुरा क्या पहचानें, हम तो प्रीतम के दीवाने।
बस एक उन्हीं को जानें, हमको कोई कुछ भी माने।
चल पड़े जिधर मन की तरंग, हम पथिक हमारा और ढंग।।

¬ Jh ijekRus ue%

fu.kZ;

QkVks

ys[kd%

lk/kqoh"k eas ,d ifFkd

izdk'kd%

Jh Lokeh ifFkd vf[ky Hkkjrh; nkr0; lsok lfefr

28] fo/kku lHkk ekxZ] y[kuÅ&226001

fo"k; lwph

^^vkuks Hknzk% Øroks ;Urq fo'or%

vgadkj ds ikj

xqgk dk izHkko

/;ku ;ksx

mikL; vkSj mikluk

foosdh ekuo

d`ik dh efgek

'kkfUr vkRek ds lkFk

v'kkfUr ls cpks

AA Jh ijekReus ue% AA

^^vkuks Hknzk% Øroks ;Urq fo'or%

हे परमात्मन! संसार की चारों दिशाओं से हमें कल्याणकारी व उत्कृष्ट विचार प्राप्त हों। ¼on½

प्रत्येक मनुष्य अपने शुभाशुभ कर्मों के द्वारा स्वीकार किये हुए शुभाशुभ निर्णय का परिचय दे रहा है।

संग तथा संस्कार अथवा अभ्यास से प्रेरित होकर पशु पक्षी भी कर्म करते हैं, वह निर्णय नहीं करते।

निर्णय करने की बुद्धि केवल मनुष्य को ही प्राप्त है। परन्तु लाखों मनुष्य निर्णय करने में बुद्धि का उपयोग नहीं करते, फिर भी अपने से सम्बन्धित जनों को अपने निर्णय के अनुसार चलने को प्रेरित करते रहते हैं।

मनुष्य के जीवन में कभी न कभी ऐसा अवसर आता ही है कि जब fde~ de~ fde~ vdesZfr do;ksI;= eksfgr– क्या करना चाहिये, क्या न करना चाहिए, इसके निर्णय में विद्वान भी असमर्थ अर्थात् मोहित हो जाते हैं।

¼xhrk 2½

वे पुण्यवान सज्जन हैं जो प्रत्येक कर्म करने के प्रथम धर्मशास्त्र का निर्णय जान लेते हैं। उनसे भी अधिक वे पुण्यवान हैं जो परम हितैषी वीतराग ब्रह्मवेत्ता गुरु का निर्णय जान लेते हैं। उनसे भी उत्तम मानव वे हैं जो परम गुरु भगवान का निर्णय स्वीकार करते हैं।

बहुत ही शोचनीय बात है कि अखबार समाचार–पत्र में धन, भूमि, भवन, पदाधिकार आदि से सम्बन्धित कोई निर्णय पढ़ने–सुनने पर प्रायः विद्वान लोग नहीं भूलते, लेकिन सन्त निर्णय, शास्त्र निर्णय, गुरु निर्णय को भूल जाते हैं।

समाचार–पत्र में यदि निकल गया है बिजली नहीं मिलेगी, पानी के नल बन्द हो जायेंगे, शकर नहीं मिलेगी, ट्रेन बन्द हो जायेगी अथवा भूमि–भवन पर सरकारी अधिकार हो जायेगा अथवा नोट बन्द हो जायेगा। इस प्रकार की कोई भी लाभ या हानि की सूचना निकल जाने पर दिन में अनेकों बार बुद्धिमान मनुष्य उस सूचना का स्मरण करेगा, साथ ही आगे के लिये अपनी सुविधा के लिए, निर्वाह के लिए प्रयत्न करेगा, वह निकले हुए निर्णय के प्रत्यक्ष होने पर शोक–विलाप को व्यर्थ मानेगा क्योंकि निर्णय बदल नहीं सकता– ऐसा निश्चय लेकर, प्रत्येक व्यक्ति अपने कर्तव्य का निर्णय करेगा।

आश्चर्य है कि आज सहस्रों साधक, श्रोता, सत्संगी, सेवक, शिष्य, गुरु द्वारा गीता, रामायण, गुरुग्रन्थ, धर्म–ग्रन्थों द्वारा निर्णय

सुनते हैं, पढ़ते हैं कि जिसका भी संयोग हुआ है उसक निश्चित ही वियोग होगा, जो कुछ भी तन, धन, परिवार मिला है वह छूटेगा ही। जो भी आयेगा वह जायेगा ही। इसीलिये विनाशी के साथ रहने वाले अविनाशी का अभी से आश्रय लो, कुछ भी छुटने, छिनने के प्रथम ही सदा रहने वाले को जान लो—इत्यादि निर्णय पढ़—सुनकर भी लोग ध्यान नहीं देते, सावधान होकर भय से, चिन्ता से शोक—विलाप से बचने का प्रयत्न नहीं करते।

लाखों व्यक्ति अपने माता—पिता, पत्नी—पति के सुखद निर्णय को स्वीकार कर लेते हैं, लेकिन गुरु निर्णय को न मानकर उसके विपरीत ही व्यवहार करते हैं।

vgdkj d ikj

1— अहंकार आत्मा से उत्पन्न हुआ है। अहंकार के आगे बुद्धि है, बुद्धि के आगे मन है, मन के आगे इन्द्रियाँ हैं, इन्द्रियों के आगे विषय है। शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध की प्रतीति जहाँ हो रही है, वही संसार है।

2— जिसे सत्य आत्मा परमात्मा में शान्ति आनन्द का अनुभव करना है उसे अहंकार के पीछे आत्मा को जानना चाहिए।

3– सुख–दुःख, जन्म–मृत्यु, भय–चिन्ता, अशांति तथा अहंकार का विस्तार मन में ही है, इसीलिये वाह्य वस्तुओं के त्याग से शांति नहीं मिलती, मन के त्याग होते ही समस्त बन्धनों से मुक्ति मिल जाती है।

4– जिसमें समस्त संकल्प भरे हैं, इच्छाओं का समूह जिसमें है, वह मन है। संकल्पों का कर्ता और संकल्प पूर्ति का भोक्ता अहंकार है।?

5– जहाँ श्वास लीन होती है, वहीं से मन का उदय होता है। मन के उदय अस्त को देखते रहने के लिए प्राण की गति को ध्यान से देखते हुए प्राणोपासना सुगम साधना है।

6– मन का मूल अहंकार है। अहंकार के मूल में आत्मा है। देह में व्यापक चेतन सत्ता को आत्मा कहते हैं। विश्व में व्यापक चेतन को परमात्मा कहते हैं। जिसे ज्ञान में आत्मा परमात्मा का बोध होता है उसे महात्मा कहते हैं।

7– अज्ञानवश हम अपनी ही मान्यताओं से बँधे हुए हैं। हमने जो स्वीकार कर लिया है वह हमें घेरे रखने वाली दीवारें हैं। किसी कैदी को बन्धन में रखने वाली प्रायः कारागृह की एक दीवार होती है, लेकिन हम मनुष्य अपनी स्वीकृतियों की अनेकों दीवारों के भीतर कैदी बने हुए हैं। .... कोई भी साधक, अन्तर यात्रा में अन्नमय कोष, प्राणमय कोष, मनोमय कोष, विज्ञानमय कोष को पार कर जाने पर आनन्दमय कोष में नित्य आनन्द का अनुभव कर पाता है।

8– भोगी अहंकार तो बाहर की मानी हुई परिधियों के भीतर ही चक्कर लगाता रहता है।

9– लोहे की दीवार पार करने का प्रयत्न किया जाता है, परन्तु सोने की दीवार मिल जाये तो उसकी सुरक्षा की चिन्ता होती है। इसी प्रकार लोभी साधक भी सोने के सुखद कारावास की रक्षा करते हैं क्योंकि अज्ञान में हैं।

10– भगवान का निर्णय है कि मुझ परमात्मा में चित्त लगा लो तब तो समस्त मान्यता की दीवारों (दुर्गों) को तुम मेरी कृपा से पार कर जाओगे। यदि अहंकारवश नहीं सुनोगे तब तो विनाश का दुःख भोगना होगा।

¼xhrk 18@58½

;g Hkh x# fu.k; g %&

11– जो विद्वान गम्भीर होते हैं, ज्ञान में सावधान रहते हैं। उन्हीं में सन्तुलन की शक्ति तथा तटस्थ रहने एवं उपेक्षा की क्षमता होती है, वह हिलते नहीं।

12– जो कुछ करने से तुम अशांत दुःखी होते हो वह करना ही अपने प्रति शत्रुता है।

13– पुण्य दान के लिए मनुष्य बहुत सोचता है, ठहर जाता है, परन्तु पाप तत्काल ही कर डालता है। यदि तुम कोई हिंसात्मक पाप करने के लिए चौबीस घण्टे ठहर जाओ तब तो कभी कोई पाप बन ही नहीं सकता।

14– तुम पाप से सदैव बचते रहो। मूक पशु–पक्षी, वृक्ष, लता सभी का मंगल चाहो। प्रेम से भरा हृदय ही ऐसा चाहता है।

15– जब तक तुम अपने को अथवा अपनी प्रिय वस्तुओं तथा व्यक्तियों को सुरक्षित रखने के लिये प्रयत्न करोगे तब तक संघर्ष हिंसा से बच ही नहीं सकोगे।

16– अहंकार अणु है, इसके टूटने में महाशक्ति का विस्फोट होता है, लेकिन प्रायः सभी व्यक्ति इस 'अहं' रूपी अणु को बचाने में ही व्यस्त रहते हैं।

17– जहाँ तक 'मैं' बना रहता है वहाँ तक प्रभु नहीं मिलता। गुरु निर्णय है कि पदार्थों में प्रीति होना पाप की परिधि है। पदार्थों में प्रीति न होना पुण्य का क्षेत्र है।

18– नित्य आनन्दमय परमात्मा से विमुख रहकर जब तक, जहाँ तक तुम वस्तुओं, व्यक्तियों में ममता आसक्ति बढ़ाते रहोगे तब तक अहंकार पुष्ट, बलिश्ट होता रहेगा।

19– भोगी अहंकार ही नाममय, रूपमय, जातिमय, परिवारमय, धन, भूमि–भवनमय बनता है। यही अहंकार ज्ञानी बन कर त्यागी, तपस्वी, सन्यासी, हंस, परमहंस बनकर, भिखारी के वेष में, महाराज बनकर, पूजा प्रतिष्ठा से सन्तुष्ट होता रहता है, किन्तु बना हुआ अहंकार निश्चिन्त, निर्भय, निर्द्वन्द, शांत नहीं हो पाता।

20– यह भी गुरु निर्णय है कि तप, जप, ज्ञान, ध्यान द्वारा मन की इच्छा पूर्ति से तुम अहंचारी बने रहोगे, ब्रह्मचारी नहीं हो सकोगे। कामना वासना की पूर्ति ही अहंचर्य है। ब्रह्म जैसी चर्या हो जाने पर ब्रह्मचर्य पूर्ण होता है। तुम संयम के द्वारा शक्तिशाली होकर ही कामनाओं, वासनाओं से मुक्त हो सकते हो।

21– यदि तुम अन्धविश्वास में अपने मन को बाँधे हो अथवा भय से घिरे हो, लोभ, मोह, कामनाओं से बुद्धि भ्रमित है, तब संयमी नहीं हो सकते हो। .... सुखद–दुःखद परिस्थिति में अथवा द्वन्दों के मध्य में शांत सम रहने को संयम कहते है।

22– इन्द्रियों के झरोखों से झाँकते रहना और शांत अविचलित रहना संयम है।

23– जो अपने लिए किसी से कुछ आशा नहीं करता, वही संयमी होकर शक्ति सम्पन्न होता है। उसी में सेवा की क्षमता होती है।

24– जो तुम्हें विनम्र दीखता है उसके प्रति अनायास ही आकर्षण होता है जो तुम्हारे अहंकार को तृप्त करता है वही विनम्र दीखता है।

25– जो अपने प्रेम में ही तृप्त सन्तुष्ट नहीं होता, वही तुमसे तृप्ति की आशा करता है। तुम किसी से आशा न करो।

26– यह गुरु निर्देश है कि जो कुछ तुम अपने को जानते हो, दूसरों के विषय में जितना जानते हो उससे बहुत अधिक जानना शेष है। ज्ञान का अन्त नहीं है।

27– परमात्मा के विषय में भी जितना जानते हो उतने को ही पूर्ण न मान लो, वह तो तुम्हारी स्मृति की सीमा है। जिसे तुम ग्रहण करते हो या छोड़ देते हो, वह परमात्मा अर्थात् सत्य नहीं हो सकता।

28– सत्य परमात्मा तो अखण्ड अनन्त है, वह पकड़ा या छोड़ा नहीं जा सकता। अज्ञान में ही जो कुछ पकड़ा जाता है, वह स्वतः छूट जाता है। अज्ञान में मृत्यु के भय से मुक्ति नहीं पा सकोगे। ज्ञान में ही अमरत्व का अनुभव होता है। मृत्यु के द्वारा से तुम जीवन को जानने के लिए सावधान हो जाओ।

29– सावधान रहकर देखो! तुम्हारी ढेरों उपाधियाँ भोगी, अहंकार की ही पुष्टि करती हैं अहंकार ही सुरक्षित रहना चाहता है और सुरक्षित रखना चाहता है।

30– यह भी गुरु निर्णय है कि जीवन एक अन्तहीन विस्तार है। जीवन के अनन्त विस्तार में दूसरा कोई है ही नहीं। हम अपने ही को हाथ जोड़ रहे हैं, अपने ही पैर छू रहे हैं, अपनी ही स्तुति तथा अपनी ही निन्दा कर रहे हैं। हम दो बनकर अपने आपके साथ खेल रहे हैं।

'एकै पवन एक ही पानी, एक ज्योति संसारा।
एकहि खाक गढ़े सब भांड़े, एक ही सिरजन हारा।।'

X X X X

'करूँ मैं दुश्मनी किससे, अगर दुश्मन भी हो अपना।
मुहब्बत ने नहीं दिल में, जगह छोड़ी अदावत की।।

31– मन की सीमा में द्वैत रहता है। मन के रहते अहंकार जीता है। अहंकार ही भय, चिन्ता, भेदभाव से ग्रस्त रहता है। कुछ पाने की अथवा कुछ खोने की वासना अहंकार में ही रहा करती है।

32– जब तक अहंकार मान और नाम चाहता है जब तक संग के प्रभाव से अहंकार मोही, लोभी तथा सुख भोग का कामी है। जब तक सुख, दुःखादि द्वन्दों के प्रभाव से अहंकार रागी द्वेषी है तब तक परमात्मा के स्वरूप का बोध नहीं होता और अविनाशी पद की प्राप्ति नहीं होती। बहुत ही आवश्यक है कि तुम अहंकार को देख सको।

33– गुरु आदेशानुसार तुम असत् को, अनित्य को अस्वीकार करते रहो, साथ ही सत् परमात्मा की खोज बन्द कर दो और असंग होकर शून्य में ठहर जाओ, तभी साक्षात्कार होगा।

34– हम सबके साथ शुद्ध चैतन्य ही ब्रह्म है। जब तुम खाली घड़े की भाँति शून्य, अर्थात् खाली हो जाओगे तब परमात्मा से अपने को भरे हुए पाओगे।

35– यदि तुम संसार प्रपंच से अपने को भरे रहोगे तब परमात्मा को बाहर ही खोजते रहोगे।

36– ज्ञान–चक्षु खुलने पर दीखता है कि हम अपने ही हाथ जोड़ रहे हैं, प्रणाम कर रहे हैं, अपने को ही प्यार कर रहे हैं, या तिरस्कार कर रहे हैं, अपनी ही पूजा कर रहे हैं, कोई दूसरा है ही नहीं।

37– जो महापुरुष ज्ञान–चक्षु से सम्यक् दर्शन करते हैं, उन्हीं का यह सन्देश है कि अन्तर में देखते–देखते भोगी अहंकार के अभाव में ही सत्य की अनुभूति होती है।

38– सभी प्रकार की आशाओं के नाश होने पर मुक्ति मिलती है। भूताकाश में जिस प्रकार दृश्य अथवा नाना प्रकार के आकार दीखते हैं, उसी प्रकार चित्ताकाश में देव–दर्शन होते हैं और चिदाकाश में गुरु तत्त्व के दर्शन होते हैं। ब्रह्म नाड़ी द्वारा ही चित्ताकाश से चिदाकाश में प्रवेश होता है।

निराकार चैतन्य ही शिव तत्त्व है। साकार चैतन्य ही शक्ति तत्त्व है। पुरुष चिद्रूप है और प्रकृति चिन्मयी है।

39– जिस प्रकार मधुर सुरक्षित वस्तु दूसरों को देने के पश्चात् भी देने वाले हाथों में मधुरता एवं सुवास रह जाती है, उसी प्रकार कटु दुर्गन्धयुक्त वस्तु के देने के पश्चात् भी कटुता एवं दुर्वास हाथों में आती रहती है। इसीलिये दूसरों को देते समय सावधान रहो, ऐसा कुछ न दो जो तुम्हें प्रिय नहीं है।

40– यह भी गुरु आदेश है कि आनन्द को, प्रेम को, परमात्मा को बाहर नहीं, अपने जीवन के विस्तार में, असीमता, अनन्तता में एवं चेतना की अतल गहराई में उतर कर देखो।

सजग रहने पर शांत, स्वस्थ होने पर इस विनाशी जीवन के पीछे अविनाशी जीवन का अनुभव होता है।

41– सत्य परमात्मा को चाहने वालों के लिये यह भी गुरु सम्मति है कि तुम आस्तिक न बनो, नास्तिक भी न बनो, विश्वासी न बनो और अविश्वासी भी न बनो। ध्यान से देखो कि दृश्य सत्य है या दृष्टा सत्य है, अथवा दृश्य दृष्टा का आश्रय सत्य है। जहाँ तक कुछ भी पाने की चाह है, वहाँ तक मुक्ति नहीं मिलेगी। चाहने वाला सम्राट भी बाहर से धनवान, ऐश्वर्यशाली दीखता है, परन्तु भीतर कुछ चाहते रहने के कारण दरिद्र ही बना रहता है।

42– अहंकार में ही और अधिक, दूसरों से अधिक, सर्वाधिक पाने की अथवा होने की तृष्णा रहा करती है। यह अहंकार सुख की चाह के पीछे दु:ख में ले जाता है।

43– अहंकार सहित दान करने से, त्याग तथा तप करने से अहंकार ही पुष्ट होगा, शान्ति सुलभ नहीं होगी। अहंकार भिखारी और दरिद्र होने के कारण प्रेम की महिमा को नहीं देख पाता।

44– अहंकार में 'मैं' के मिटते ही परमात्मा एवं प्रेम के द्वार खुल जाते हैं।

45– यह भी गुरु सन्देश है कि जहाँ सब कुछ विलीन हो जाता है, वहीं परमात्मा शेष रहता है।

46– शास्त्रों, सिद्धान्तों, शब्दों के द्वारा जब परमात्मा नहीं मिल रहा हो तब मौन, शांत एकान्त में होकर धैर्य के साथ स्वयं में ही पूछो कि मैं कहाँ हूँ, कैसा हूँ और मेरे साथ परमात्मा क्या है? प्रश्नोत्तर की धैर्य के साथ स्वयं में प्रतीक्षा करो।

47. अनेकों उपदेशक सावधान करते हैं कि जो कहा जा रहा है उसे गाँठ में बाँध लेना, भूल न जाना। किन्तु गुरु निर्णय है कि अभी तक जो गाँठ में बाँधा हो, जो स्मृति में भर लिया हो उसे अलग रख देना, गाँठ से खोल देना और सब प्रकार से खाली होकर अकिंचन होकर देखना कि खाली होने पर शेष क्या रह जाता है।

48– तुम अपने से अधिक किसी को दुःखी देखो तब उसे अपना मानकर उसकी सहायता करो और अपने से अधिक किसी को सुखी देखो तब अपने को उसी का जानकर प्रसन्न सन्तुष्ट रहो।

भलाई को बढ़ाने के लिए सदा भलाई करते रहो। बुराई को मिटाने के लिए तुम अपने द्वारा बुराई कदापि न करो प्यार से ही प्यार उत्पन्न होता है, बैर से बैर कदापि नहीं मिटता।

बुराई करने वाले से बुराई का बदला न लेकर उसे भगवान के विधान पर छोड़ दो।

49– जिस प्रकार राह चलते किसी की पीड़ा को देखकर तुम भी हाय! हाय! कहने लगते हो और किसी की प्रसन्नता, हर्ष को देखकर तुम भी प्रसन्न होकर वाह! वाह! करने लगते हो, उसी भाँति इस देह को भी अन्य मानकर इसकी पीड़ा में हाय! हाय! और प्रसन्नता में वाह! वाह! करते हुए स्वयं को देह से भिन्न जानकर भीतर से शांत सम स्थित रहो।

50– विनाशी वस्तु व्यक्ति से राग या द्वेष के रहते अहंकार पुष्ट होता रहता है, अहंकार में ही भेद–भाव चलता है और भेद–भाव से ही सारे संसार में और परिवार में संघर्ष, कलह, क्रोध, हिंसा का व्यवहार चलता है।

51– भगवान का निर्णय है कि भोगी अहंकार अपनी विशेष मूढ़ता के कारण अपने को (धनवान, बलवान, गुणवान, विद्वान, त्यागी, तपस्वी, ज्ञानी, ध्यानी, सिद्ध, योगेश्वर आदि बना कर) कर्ता मानता है, इसीलिए भोक्ता बना रहता है। भोग ही पूर्ण योग में बाधा डालता रहता है।

52– यह गुरु निर्णय है कि तुम अहंकार को मारने की, मिटाने की चिन्ता में न पड़ो, प्रत्युत ध्यान योग से इसे खोजो कि कहाँ है, क्या रूप–रंग है? खोजने पर अहंकार भीतर कहीं दिखाई न देगा, उसी शान्त अवस्था में आत्मा परमात्मा का बोध होगा।

53– जब तक तुम शान्ति के लिए, आनन्द के लिए, परमेश्वर के दर्शन के लिये स्वयं में शांत न होकर बाहर की ओर भागते रहोगे, तीर्थों में, मन्दिरों में, गिरि गुहाओं में खोजते रहोगे तब तक थकावट ही पल्ले पड़ेगी; विश्राम कहीं भी नहीं मिलेगा। विश्वास न हो तो चारों ओर दौड़ने–भागने वालों को देखो, उनके भीतर निरीक्षण करो तो पता लगेगा कि बाहर से दौड़ने–भागने का दूर–दूर की यात्राओं का तथा दर्शनों का, दान का अभिमान ही बढ़ा है, दुःख नहीं मिटे हैं। अहंकार ज्यों का त्यों अशांत है, दरिद्र ही है।

54– जब तक अहंकार भजन करेगा, त्याग तप करेगा या सेवा करेगा, दान करेगा तब तक भोग का अन्त नहीं होगा।

55– तुम शुभ–अशुभ के कर्त्ता न बनकर दृष्टा होकर देखो, पुनः देखने वाले स्वयं को देखो।

56– जब सब प्रकार के विचार शांत हो जाते हैं तब जो शेष रहता है वही सत्य परमात्मा है।

57– सोचना भी सूक्ष्म कर्म है। स्थूल कर्म देहन्द्रियों से होता है, सूक्ष्म कर्म मन से होता है। भाव अति सूक्ष्म शक्ति है। भाव से भगवान बनते हैं, ज्ञान में दीखते हैं, प्रेम में मिलते हैं।

58– यह गुरु निर्देश है कि सत्य परमात्मा को आत्मा में देखने के लिये कर्म की अपेक्षा नहीं है, भाव की अपेक्षा नहीं है और विचार की भी अपेक्षा नहीं है।

59– अपनी–अपनी सीमा में कर्म का जगत, भाव का जगत, विचार का जगत विलक्षण ही है। परन्तु परमात्मा सबके पार है। यह तोः–
^i:dfr ikj lc mj ij okLh gSA'

60– गुरु निर्देशानुसार सत्य परमात्मा सर्व का अस्तित्व है, उसकी अनुभूति के लिए अपने में ही ठहरना होगा और अपने समीप पहुँचने का मार्ग किसी से नहीं पूछना है क्योंकि कोई मार्ग हो ही नहीं सकता। सभी मार्ग अपने से दूर ले जाते हैं। परमात्मा वहीं है जहाँ तुम हो, हम हैं, सब हैं।

61– मन को चेतनस्वरूप में स्थिर करते हुए संकल्पशून्य होने की अभिलाषा करो।

62– सुखास्वाद के क्षण आत्मा में होने के क्षण हैं, परन्तु अज्ञानवश ही, कोई वस्तु या व्यक्ति सुखद प्रतीत होते हैं। मनन करो और देखो, आनन्द बाहर नहीं है, वह तो तुम्हीं हो।

63. अस्तित्व ही तुम्हारा स्वरूप है। जिसका अस्तित्व नहीं है वही दृश्य रूप में माया है।

64. आत्मा को प्राप्त नहीं करना है, सत्य को प्राप्त नहीं करना है, क्योंकि तुम्हीं आत्मा हो।

65. अपनी–अपनी मान्यता के अनुसार, ईश्वर की पूजा करने से जैसे–जैसे दोषों का त्याग और शुभ सुन्दर का दान बढ़ता है, तभी ईश्वर गुरु रूप में प्रकट होकर यथार्थ उपदेश देता है। गुरु की सेवा पूर्ण होने पर आत्मा के रूप में गुरु प्रत्यक्ष होता है।

66. यह भी गुरु निर्देश है कि जब कभी कोई क्लेश हो तभी अहंभाव पर ठहरो, सभी संग से असंग होकर 'मैं' को देखो।

67. तुम अपने को त्यागी देखने के लिए व्याकुल नहीं बनो क्योंकि अपनी इच्छा से न त्याग कर सकते हो, न ग्रहण कर सकते हो।

68. सब कुछ प्रारब्ध पर, नियति पर, प्रभु के विधान पर छोड़कर शान्त रहो, दृष्टा होकर देखो। यदि सब कुछ छोड़ने का साहस है तो छोड़ के देखो। सब कुछ छोड़ने पर जो शेष रहेगा वही परमात्मा है।

69. अहंकार ही अज्ञान में धन, मान भोगजनित सुख के लिए हिंसा करता है, चोरी करता है। ईर्ष्या, द्वेष, कलह, क्रोधादि पापों से संकोच नहीं करता है, इसीलिए घोर कष्ट भोगता है।

70. अहंकार के द्वारा ही प्रभु की शक्ति का आश्रय लेकर समस्त पाप चलते रहते हैं। पाप से ही पतन है, दुःख है।

71– किसी योगी के चित्त में जब विक्षोभ होता है तब पाप ही है। किसी ज्ञानवान के लिये भेद दर्शन पाप ही है। कोई भक्त जब भगवान को भूल जाता है तब प्रभु विस्मृति को भी पाप ही कहते हैं।

72– जिसके द्वारा मनुष्य लक्ष्य को भूल जाता है, वह पाप ही है।

73– तुम किसी पाप से लड़ाई न करो, पुण्य को देखो। अन्धकार से न लड़ो, प्रकाश को देखो।

74– पापों का प्रभाव मन बुद्धि में ही पड़ता है, आत्मा में नहीं पड़ता। आत्मा तो साक्षी है, आत्मा तो दृष्टा है। विचार रहित होने से निर्मलता आती है और आत्मा का सामीप्य होता है।

75– साक्षी भाव से दस मिनट मौन रहकर आत्मा की समीपता का अनुभव करो–यह गुरु सम्मति है।

76– सत् परमात्मा यदि अभी इसी क्षण तुम्हारे साथ नहीं है तो कहीं भी नहीं है। यदि सर्वत्र वही है तो अभी, इसी क्षण तुम्हारे साथ है। तुम उसी में ही नित्य अभिन्न हो।

77– प्रकृति ही परमात्मा का घूंघट है। प्रकृति में ही अहंकृति की प्रधानता है। अहंकृति की सीमा में ही विकृति का भोग है और संस्कृति से विमुखता है।

78– आकृति का मोही, अहंकृति का भोगी, ईश्वर कृति को नहीं देख पाता।

79– संस्कृति ही ईश्वर कृति के दर्शन का द्वार है। ईश्वर कृति का दर्शक अहंकृति की सीमा में नहीं डूबता है।

80– अहंकार शून्य होने पर सद्भाव की दृढ़ता में परमात्मा की स्मृति और प्रपंच की विस्मृति होती है।

81– अहंकार की सीमा से युक्त चेतना परमात्मा से अभिन्न होती है–यही ज्ञानी की भक्ति है।

82– ज्ञानमयी शक्ति में प्रभु को पुकारने की अपेक्षा नहीं रहती, केवल प्रभु की पुकार सुनी जाती है।

83– भक्त देहरूपी मिट्टी के दीपक में परमात्मा की चेतन ज्योति को देखता है, इसीलिये मिटने वाले को देखकर प्रसन्न रहता है और मृत्यु को जानकर जीवन में अभय होता है।

84– परमात्मा ही सनातन सत्य है, वही हमारा अपना स्वत्व है, उसी में हमारी मुक्ति है, उसी में भक्ति की पूर्णता है। जब मन नहीं रहता तब आत्मा का बोध होता है।

85– ज्ञान में सनातन परमात्मा का योग है। अपने स्वरूप के अज्ञान में ही संयोग का भोग होता है।

86– स्वरूप में संयम रखने से आत्म–ज्ञान होता है।

87– गुरु मन्त्र द्वारा यह भी ज्ञात हुआ कि परमात्मा को पाने के लिये कुछ नहीं करना है। करना छोड़कर केवल देखना है। चित्त के शान्त होने पर दर्शन का द्वार खुल जाता है।

88– जब तक हम देह में, धन में, परिवार में, संयोग–भोग में आसक्त हैं, अटके हैं तब तक विराट परमात्मा का अनुभव नहीं कर सकते।

89– अहंकार में ही वासनायें हैं। सारी कर्म–प्रवृत्ति की निवृत्ति होने पर ही मोक्ष होता है।

90– प्रवृत्ति से मुक्त होने पर, विचार की समाप्ति होने पर सत्य दर्शन का द्वार खुल जाता है।

91– जो स्वयं के सत्य से, अर्थात् आत्मा में सन्तुष्ट तृप्त नहीं है वही दूसरों के आने में या दूसरों से कुछ पाने में तृप्ति मानता है और दूसरों के पास जाता है, आशा रखता है, वह स्वतन्त्र नहीं है।

92– बुद्धि का एक सिरा मन से मिला है दूसरा सिरा आत्मा से मिला है, उसी सिरे को प्रज्ञा कहते हैं। अहंकार के पिघलने पर, गलने पर आत्मा का अज्ञान मिटता है। प्रेम में आत्मा का बोध होता है।

93– अहंज्ञान ही सर्दीमय, गर्मीमय, दुःखमय, सुखमय, शत्रुमय, मित्रमय, सर्वमय हो रहा है। ज्ञान ही कभी राजामय होना चाहता है, कभी भिखारीमय होना चाहता है। स्वयं जैसा है, जो है, उससे अतृप्त है, इसीलिए अशान्त है। आत्म अज्ञान ही अहंकार है। अहंकार ही अज्ञानी है। अहंकार को जितना भी दुःख है, वह सुख का प्रलोभन मिटाने के लिए है।

94– cMh fofp= ckr g&अहंकार को खोजते रहो तो परमात्मा मिल जायेगा। अहंकार न खोजने वाला शिक्षित पण्डित भी अज्ञानी ही रहेगा। तुम अहंकार को मिटाने का उपाय, मन को वश में करने का उपाय कर चुके हो तो अब अहंकार को देखो, मन को देखो; मन के साथ स्वयं को न जोड़ो।

किसी से तद्रूप न होकर किसी मय न बन कर आत्मा को जानने के लिए शांत होकर देखो।

95– अहंकार जो कुछ करता है वही बन्धकारी कर्म है। अहंकार से रहित जो कर्म होता है वही अकर्म है।

96– परमगुरु भगवान की बात मानने में जीव परतन्त्र नहीं है फिर भी अहंकारवश भगवान को ही नहीं मानता, अन्य सभी को मानता है। परमगुरु भगवान धन, भूमि नहीं माँगते केवल मन चित्त बुद्धि माँगते हैं, किन्तु प्रेम के बिना कोई दे नहीं पाता।

यह अहंकार जिससे प्रीति करता है उसे ही सब कुछ देता जाता है। जब तक परमप्रभु से प्रीति नहीं होती तब तक देने का साहस नहीं होता।

97– जो आदि अन्त से रहित है, जो स्वाभाविक ज्ञान प्रकाश स्वरूप चित्त तत्व है, उसी को मुनिजन परमप्रभु देवाधिदेव महादेव कहते हैं। उस महादेव की पूजा विवेक, ज्ञान एवं सर्व भूतों में आत्म–बुद्धि अथवा शमदम बोधादि पुष्पों से अथवा कमलवत ह्रदय से पूर्ण होती है।

98. दृष्टा और दृश्य के बीच में यह जटिल अहंकार ही परम देव की उपासना में बाधक बनता है और ज्ञान में दीख जाने पर यही उपासना का द्वार बन जाता है। मैं आत्मा हूँ–यह ज्ञान में बोध होता है। परमात्मा ही मेरा है, यह प्रेम में बोध होता है।

99. आत्मा ही नित्य अविनाशी जीवन है–यह अनुभव तभी होता है जब अहंकार मर जाता है।

100. सुगन्धित पुष्प से सुगन्ध ही फैलती है, इसी भाँति सज्जन ही सज्जनता का प्रसार करते हैं। दुर्गुणी, दोषी व्यक्ति दोषों की दुर्गन्ध फैलाते हैं। तुम इतनी सुगन्ध फैलाओ कि दुर्गन्ध दबती चली जाये।

101. शान्त सन्त वही है जिसे आनन्द का स्रोत प्राप्त हो गया है, वह वहीं से आनन्द बिखेरता रहता है।

102. आनन्द का स्रोत तुम्हारे ही भीतर है, साधना द्वारा उसे खोद लो। शान्त और मौन होकर भीतर उतरने पर चेतना की गहराई में आनन्द का स्रोत मिल जाता है।

103. ....आरम्भ में शान्त मौन रहने का नियम बनाओ, उसे बढ़ाते जाओ। जो आरम्भ में कठिन दीखेगा वही अभ्यास से सहज हो जायेगा।

104. जहाँ से सब कुछ उत्पन्न होता है और जहाँ सब कुछ लीन हो जाता है, वही परमात्मा है। जहाँ विचार की लहरें शान्त हो जाती हैं, संकल्प नहीं उठते हैं, वहीं अचल अखण्ड परमात्मा शेष विद्यमान है। जब साधक स्वयं में पा जाता है, तभी परमात्मा को पा जाता है।

105. अहंकार–शून्यता में ही आत्मा की झलक मिलती है। जिसे तुम 'यह' कहते हो तभी परमात्मा को पा जाता है।

106. यह गुरु निर्णय है कि असत् से अनित्य से विमुख होने पर जीवात्मा सत्संगी होता है। असत् एवं अनित्य का आकर्षण ही पराधीनता से बाँधे रहता है।

107. जो निरन्तर नहीं रहे, क्षण–क्षण बदलता रहे वही अनित्य है। अनित्य सुख तथा धन, मान एवं अपने नाम की इच्छा रखते हुए तुम सेवक भी नहीं हो सकते, तब स्वतन्त्र स्वामी कैसे हो सकते हो?

108. यह भी गुरु निर्णय है कि जाग्रत में जब दृश्य से किसी अन्य से सम्बन्ध नहीं रहता तब 'मैं' का बोध होता है, उस बोध का वर्णन सम्भव नहीं है। भिन्नता रहते योगानुभव नहीं, और भेद के रहते बोध नहीं होता। 'स्व' के द्वारा ही 'स्व' का बोध होता है।

109. इस निर्णय पर ध्यान दो! जब तुम कुछ भी नहीं चाहोगे, जब तुम अपना व्यक्तिगत कुछ भी नहीं मानोगे, जब तुम देहादि वस्तुओं में ममता नहीं रहने दोगे तभी परमात्मा में आत्मीयता हो सकेगी।

110. देहादिक वस्तु अथवा माता–पिता आदि सम्बन्धी जनों के प्रति प्रगाढ़ प्रीति होने से जितनी आत्मीयता दृढ़ हो गयी है, उतनी परमात्मा की महान महिमा सुनने पर नहीं हो पाती। अनन्त परमात्मा के प्रति आत्मीयता होने के लिए विरक्त अनासक्त सन्त के प्रति श्रद्धापूर्वक आत्मीयता दृढ़ होना अत्यंत आवश्यक है। सच्चे सन्त ही अपने प्रति होने वाली आत्मीयता को परमात्मा के प्रति मोड़ देते हैं।

111. जितने समय तक, एक घन्टा तक यदि तुम आसक्ति ममता, कामना से रहित रहते हो उतने समय तक अर्थात् 'एक घन्टा तक' तुम स्वतन्त्रता में हो। जब तुम कहीं आसक्त न रहोगे, कहीं ममत्व न रहेगा, कोई कामना न रहेगी तब तुम्हारी स्वतन्त्रता अनन्त हो जायेगी।

112. तुम सदैव उसी का साथ करो जो सदैव रहता है। कोई सम्बन्धी जिन्हें तुम अपना मान रहे हो वे सदा नहीं रहेंगे। इसलिए उनकी सेवा कर लो। धन सदा नहीं रहेगा, बल भी न रहेगा, इसलिये इसे भी सेवा में सार्थक कर लो। यदि मूढ़ हो, प्रमादी हो तब तो कुछ नहीं कर पाओगे और छुटने पर, छिनने पर शोक, पश्चाताप करते हुए जाओगे।

113. ;g x# fu.k; g–अपने को तथा अपना कुछ मानते रहने तक राग नहीं मिटता।

114. पूजा–पाठ, जप–तप, ज्ञानध्यान, आराधना उपासना आदि साधना तभी सिद्ध होती है जब ममता कामना से मुक्ति मिलती है।

115. जो कुछ भी गोचर है अर्थात् इन्द्रियों तथा मन के द्वारा प्रतीत होता है उसे मानते ही न रहो, उसे ज्ञान में जान लो और जो अगोचर है उसमें आस्था दृढ़ करो। किसी स्वतन्त्र अस्तित्व को स्वीकार करना ही आस्था है।

116. ;g Hkh x# fu.k; g–जब तक तुम स्वयं को नहीं जानते हुए अज्ञान में हो तब तक भय, हिंसा, संग्रह एवं तृष्णा लोभादि की दुःखद सीमाओं को पार नहीं कर सकते, इसीलिए अपने को देह के भीतर खोजो और जान लो।

117. मैं अपने को नहीं जानता हूँ, यह स्वीकृति ही ज्ञान की दिशा में देखने का मुहूर्त है।

118. तुम ज्ञान में दृष्टि खोलकर मिट्टी, पत्थर, लोहा आदि जड़ वस्तुओं में परमात्मा की सत्ता को जानो। वृक्ष वनस्पति में सत्ता के साथ जीवन को देखो। पशु एवं प्राणिमात्र में सत्ता, जीवन, चेतना के साथ चेतना का चमत्कार देखो।

119. भोगी अहंकार के पीछे नित्य निरन्तर विद्यमान रहने वाले अस्तित्व का अनुभव करो।

120. भोगी अहंकार की सीमा में परिधि में ज्ञानस्वरूप जीवात्मा जब अपने स्वरूप को जान लेता है तब सीमित अहंकार के पार परमात्मामय हो जाता है।

121. भोगी अहंकार ही नाम रूप को स्वीकार करता है। भावना के अनुसार ही अपने रूप को गढ़ता है, अज्ञान में विस्तार को प्राप्त होता है, ज्ञान में मिटता है।

ज्ञान ही स्वशक्ति है, वह जड़ नहीं है नित्य चेतनस्वरूप है।

122. तुम्हारे जीवन में जितने अंश में ऐश्वर्य, माधुर्य, सौन्दर्य को देखकर दूसरे लोग आकर्षित होते हों, प्रभावित होते हों उस समय तुम अहंकारवश अपनी विशेषता न मानकर, परमात्मा का ही चमत्कार जानकर भीतर निरभिमानी सरल, विनम्र बने रहो।

123. जिस किसी में तेजश्री, कीर्ति, ऐश्वर्य, लज्जा, त्याग, सौन्दर्य, सौभाग्य, पराक्रम, प्रतिष्ठा, ज्ञान–विज्ञान आदि श्रेष्ठ सद्‌गुण हों, उन्हें उस व्यक्ति के न मानकर परमात्मा के ही जानकर प्रभु की विभूति समझ कर मान दो।

124. तुम निश्चित समय में जप की संख्या को तथा पूजा–पाठ आदि साधना को पूरी करते हुए सन्तोष न करो। उसका समय एवं मात्रा को अधिक बढ़ाते जाओ। वाणी के स्वच्छन्द भाषण को रोकते रहो। मन के संकल्प विकल्पों को बन्द करो। तमोगुण को रजोगुण से और रजोगुणी वृत्तियों कृतियों को सतोगुण से मर्यादित करो।

125. जब तक तुम सुबुद्धि द्वारा प्रपंच में व्यस्त वाणी को, मन चित्त को वश में नहीं कर लेते हो तब तक तुम्हारे जप, तप, व्रत, दान का प्रभाव क्षीण होता रहेगा।

126. ;g Hkh x# fu.k; g–यह जो संसार है, इसकी प्रतीति होती है। 'मैं' का भास होता है। जो नित्य निरन्तर है उस 'है' का बोध होता है। साक्षात्कार किसी अन्य रूप का नहीं होता।

127. तुम जब तक कुछ मानते न थे, कुछ करते न थे तब क्या थे, इसे देखो।

128. तुम भगवान की मूर्ति बना कर देख चुके हो तो अब इस 'मैं' की मूर्ति को पहिचान लो 'मैं' का अभाव होने पर सत् परमात्मा का बोध हो सकता है।

129. जिस परमात्मा से सब भूतों की उत्पत्ति हुई है, जिससे यह सर्व जगत व्याप्त है उस परमेश्वर की पूजा, विराट रूप में, अपने समस्त स्वाभाविक कर्मों द्वारा करते हुए साधक परम सिद्धि को प्राप्त होता है।

130. जो शक्ति सम्पत्ति तुम्हारे साथ है उसी से, उसी की सेवा करो, जो तुम्हारे सामने हो, मन से वाणी से तन से तथा संकल्पों से सेवा करते हुए यदि तुम भगवान की पूजा समझ कर सन्तुष्ट प्रसन्न रहोगे तब निश्चित ही सब प्राणियों में परमात्मा का अनुभव होने लगेगा।

131. यदि सभी प्राणियों में परमात्मा की चेतना का अनुभव करते हुए आकांक्षा तथा हर्ष–शोक से रहित सदा प्रसन्न रहोगे, तभी परमात्मा की भक्ति सुलभ हो सकेगी।

132. यदि तुम सर्वहितकारी प्रवृत्ति में स्वार्थरहित हो और तुम्हारी निवृत्ति के पीछे कोई वासना नहीं है, तब तुम महात्मा ही हो।

महात्मा होने के लिए बाहरी वेष परिवर्तन की आवश्यकता नहीं है, असद् भाव के विपरीत सद्भाव दृढ़ करने की आवश्यकता है। देहल दृष्टि के विपरीत आत्म–दृष्टि अथवा अनित्य के पीछे नित्य सत्य देखने वाली ज्ञान दृष्टि खोलने की अपेक्षा है। सन्तों का वेष नहीं, सन्त स्वाभाव ग्रहण करने का प्रयत्न होना चाहिये।

133. Hkxoku dk fu.k; g कि जो घर–परिवार को छोड़ देता है, कर्म नहीं करता, धन नहीं छूता, इतने मात्र से कोई सन्त महात्मा सन्यासी नहीं हो सकता। जो कर्म करते हुए अपने को कर्त्ता नहीं मानता, जो समत्व बुद्धि से निष्काम होकर कर्म करता है वही साधु, महात्मा पद प्राप्त करता है।

134. जब तुम किसी से द्वेष नहीं करो, किसी से कोई आकांक्षा न रक्खो, निष्काम प्रेम से रहो तब तुम नित्य सन्यासी हो। भगवान उसी को संन्यासी योगी कहते हैं जो फल की कामना न रख कर यज्ञ दान तप करने योग्य कर्मों को करता रहता है।

135. यदि तुम्हारे मन में इन्द्रियों के भोगों में आसक्ति न रहे, कर्मों में भी आसक्ति नहीं रहे, अपने सुख लाभ के लिए कोई संकल्प भी नहीं उठे तब तुम योगी हो सन्यासी हो।

136. ;g x# fu.k; g–तुम्हें जो वस्तु योग्यता सामर्थ्य आदि प्राप्त है उसी के द्वारा परहित करते रहो–यही तुम्हारे लिए कर्तव्य है।

137. तुम अपना हित चाहते हो तो रागरहित हो जाओ। जब तक अपना सर्वस्व परहित में नहीं लगा दोगे तब तक अपना हित साधने में असमर्थ ही रहोगे। तुम्हारे साथ चाहे जैसी परिस्थिति हो परन्तु मिले हुए को अपना और अपने लिए मानते रहोगे तब कर्त्तव्यपालन नहीं कर सकोगे। भेद भिन्नता के रहते कर्त्तव्यपालन असम्भव है।

138. जब तुम अशांत हो, कहीं आसक्त हो अथवा किसी को बुरा मानते हो, किसी का अनिष्ट चाहते हो तब भी कर्त्तव्यपरायण नहीं हो सकते हो। कर्त्तव्य की विस्मृति से अकर्त्तव्य कर्म बन जाते हैं। क्रोध में कर्त्तव्य की विस्मृति होती है। मोही, लोभी, अभिमानी क्रोध से बच नहीं पाता है। कर्त्तव्यपालन का अभिमान भी कर्त्तव्य से पतित कर देता है।

139. जो शक्ति सम्पत्ति तुम्हें सुलभ है, उसे सेवा सामग्री समझ कर अपनी रुचिपूर्ति में न लगाओ, सेवा के अवसर खोजते रहो।

140. यह भी गीता का निर्णय है–जितना कुछ तुम्हें प्राप्त है उसमें ही सन्तुष्ट रहो, ममता न करो और जो अप्राप्त है उसकी कामना भी कदापि न करो।

141. तुम्हें जो बुद्धि, प्रतिभा, योग्यता, भावना, सुन्दर वाणी, विद्या, चतुरता, कला, सौन्दर्य, ज्ञान–विज्ञान, सत्ता आदि प्राप्त है सब कुछ

को परमात्मा की ही विभूतियों का वरदान समझ कर कृतज्ञता विनम्रता, के भाव से प्रभु को धन्यवाद देते रहो।

142. जो व्यक्ति अहंकारवश सब कुछ अपना मानकर भोग करते हैं वे शारीरिक स्वास्थ्य को, मानसिक सन्तुलन को, परस्पर की सज्जनता को, सामाजिक सद्भावना को एवं आर्थिक सन्तोष को और आन्तरिक उल्लास अथवा दैवी प्रसन्नता को खोते रहते हैं। वे अपनी दुर्गति को नहीं देख पाते। अहंकार की अपनी कोई सत्ता है ही नहीं, यह जितने कुछ को अपना मानता जाता है उतना ही काल्पनिक कलेवर बढ़ता जाता है। अहंकार संग्रह के बल पर अकड़ता है और संग्रह से कभी तृप्त नहीं होता। अज्ञान में ही इसकी यात्रा तीव्र बनी रहती है। यह अहंकार, यात्रा से थकता नहीं और संग्रह से तृप्त होता नहीं। स्वयं के भीतर सनातन सत्य परमात्मा को जानने पर ही दरिद्र अहंकार से छुटकारा मिलता है। यही ज्ञान का महद् फल है।

143. ;g x# fu.k; g कि परमात्मा चेतना का प्रवाह मात्र है उसी में हम सब जी रहे हैं, किन्तु 'मैं मेरा' की भंवर के कारण परमात्मा के बोध से विमुख बन रहे हैं और अपने अहंकार की सीमा में खोये हुए हैं। साधक अहंकार कभी न कभी तरल होता है, पिघलता है, गलता है, अन्त में मिट ही जाता है तभी मुक्ति भक्ति पूर्ण होती है। अहंकार का मिटना ही बिन्दु का सिन्धुमय हो जाना है।

144. यह श्रुति निर्णय है कि जिस अवस्था में सब भूत, आत्मामय दीखते है उस एकत्व का अनुभव करने वालों को शोक, मोह नहीं हो सकते।

145. संसार में सारा आसार जानने वाले आसार के बन्धन से मुक्त रहते हैं, उन्हें ही परमहंस कहते हैं। जब तुम इस स्थिति को प्राप्त कर लोगे तब हंस परमहंस बनने की तथा कहलाने की अपेक्षा ही नहीं रहेगी।

146. ;g x# fu.k; g कि जब तुम किसी के विषय में सोचते हो तब विचार है और जब ज्ञान में देखते हो तब दर्शन है। जब विचार विलीन हो जाते हैं तब दर्शन आरम्भ होता है। पूर्ण विश्राम में ही सर्वोपरि उपलब्धि एवं पूर्ण योग की अनुभूति होती है। अहंकार की ग्रन्थि इस अनुभूति के द्वार को रोकती रहती है।

147. सत्य आत्मा को जानने के लिए देह को, मन को, बुद्धि को, अहंकार को जानना आवश्यक है। अहंकार को अथवा इस 'मैं' को त्यागने का प्रयास न करके इसे जान लो।

148. यह 'मैं' उतना छोटा या बड़ा होता है जितना बड़ा मेरा शरीर, मेरी जाति, मेरा परिवार, मेरी सम्पत्ति, मेरा अधिकार, मेरा ऐश्वर्य–वैभव, मेरा व्यापार, मेरा भवन, मेरा धर्म, मेरा भगवान, मेरी भक्ति, मेरी शक्ति, मेरा जीवन है। जितनी सीमा तक 'मेरा' विस्तार है, जितनी लम्बाई,

चौड़ाई, ऊँचाई–निचाई तक मेरा प्रतीत होता है उतना ही बड़ा 'मैं' है। जहाँ मेरा नहीं दीखता, वहाँ मैं भी नहीं होता, जहाँ मैं नहीं होता वहाँ कोई तो होता है और जहाँ मेरा कुछ नहीं रह जाता वहाँ किसी का तो होता ही है। यह गुरु निर्णय है कि जिसे तुम मेरा कहते हो, मेरी कहते हो उसे ही अन्य कोई मेरा–मेरी कह रहे हैं।

जिस देह को तुम मेरी कहते हो वह देह जिन तत्वों से बनी है वह तत्व करोड़ों देहों में रह चुके हैं और इस देह के बिखरने पर करोड़ों देहों में यही तत्व रहेंगे।

जिस श्वास को तुम अपनी मानते हो वह श्वास करोड़ों, अरबों प्राणियों की श्वास बन चुकी है, आगे भी बनती रहेगी। इसी क्षण अरबों प्राणी श्वास ले रहे हैं, छोड़ रहे हैं।

149–यदि तुम दूसरों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करते हो तब तो अहंकार को ही पुष्ट कर रहे हो। यदि तुम दूसरों के सामने श्रेष्ठ होने के लिए किसी कला का सहारा लेते तो तब अवश्य ही हीनता से पीड़ित हो।

150–तुम परमात्मा की अनन्त शक्ति से अपने को मिला हुआ जानकर जो हीनता से पीड़ित हैं उन पर ध्यान दो, और सन्तुष्ट करते रहो।

151–तुम प्रकृति के आन्तरिक तत्व के साथ एकता को साथ लो, तभी नित्य शान्त स्वस्थ रह सकोगे।

152—जिसके प्रति तुम्हारा हृदय प्रेम से भरा है उसके प्रति तुम फल की आशा छोड़कर कर्म करते हुए तत्काल आनन्द का अनुभव करते हो। यदि सभी के प्रति प्रेमयुक्त होकर निष्काम भाव से कर्म करने में सावधान रहो तभी तुम्हारा आनन्द अखण्ड हो सकता है। आरम्भ में एक—एक दिन फलाशा छोड़कर कर्म करते हुए त्याग से सद्गति प्राप्त करो।

153— सभी आकारों मं निराकार परमात्मा को देखने की दृष्टि खुलने पर प्रत्येक कर्म भजन हो जाता है।

154—तुम सावधान रहकर जो कुछ भी देखो उसी में परमात्मा के होने का स्मरण करो।

155—जब तुम ज्ञान में सावधान रहकर सुख में, दुःख में, लाभ में, हानि में, जय में, पराजय में, संयोग में, वियोग में, अपने चित्त को सम शान्त रख सकोगे तभी पाप से बच सकोगे।

156—जो साधक प्रत्येक कर्म परमात्मा के योग का स्मरण रखते हुए करता है, भोग नहीं चाहता है, वही आसक्ति का त्यागी रहकर पाप में प्रवृत्त नहीं होता।

157—जो कहीं से आता नहीं है, कहीं जाता नहीं है, नित्य विद्यमान है, जो पुण्यवानों की परमगति है, जो अजन्मा है, सबकी उत्पत्ति और प्रलय का स्थान है, अविनाशी एवं सनातन है, जो अमृत अविकारी एवं

अचल है, उस परमात्मा का ज्ञान प्राप्त करके कोई भी साधक मोक्ष को प्राप्त हो सकता है।

158—संसार में दीखने वाला, सभी के मन को आकर्षित करने वाला सारा सौन्दर्य परमात्मा का है। सारा ऐश्वर्य, माधुर्य एवं बल परमात्मा का ही है। सभी को सम्मोहित करने वाली लक्ष्मी तथा कान्ति परमात्मा की ही है। समस्त शक्ति एवं गुणयुक्त वस्तुएँ परमात्मा की हैं। इस प्रकार प्रत्येक आकर्षक वस्तु व्यक्ति के पीछे परमात्मा की विभूति का दर्शन करने के लिए सावधान रहो।

159— ukjk;.kks txUefrZjUrjkRek lukru%A
dVLFkks·{kj v0;äks fuyZiks O;kid% iHkq%AA

नारायण ही जगत मूर्ति रूप में सबके अन्तरात्मा सनातन कभी नाश न होने वाले कुटस्थ अव्यक्त निर्लिप्त व्यापक प्रभु हैं।

सन्त वचन— व्याकुलतारहित साधन प्राणहीन साधन है। व्याकुलता अनेक दोषों का नाश करती है। अपने प्रेमास्पद के योगलाभ के लिए सच्ची व्याकुलता वही है जो किसी के संयोग की इच्छा ही न करे।

xgk dk iHkko

जब तक तुम भगवान के निर्णय को नहीं समझोगे तब तक पुण्य कर्म किये बिना ही उत्तम भोग भोगना चाहोगे और पाप करते हुए उनके दुःखद परिणाम के भोग से बचने का प्रयत्न करते रहोगे; लेकिन पुण्य कर्म किये बिना तुम्हें सुन्दर फल भोग मिलेंगे नहीं।

भगवान का निर्णय है कि फल के लिये अधीर न होकर तुम शुभ कर्म किये जाओ उसका फल समय पर अवश्य मिलेगा।

जन्म से लेकर मृत्यु तक जितनी भी सुखद या दुःखद परिस्थितियाँ आती है वह पहले जन्म में किये हुए कर्मों का फल ही तो है। कभी–कभी न चाहते हुए भी अचानक लाभ हो जाता है, कभी हानि हो जाती है। कर्म के अनुसार नव–ग्रहों से सुफल–कुफल नहीं चाहने पर भी उतरते हैं। ग्रहों के प्रभाव से सुबुद्धि या कुबुद्धि सुंसंग–कुसंग, सुयोग–कुयोग अनायास ही आते–जाते रहते हैं।

ग्रहों के हिसाब से जब प्रतिकूल भोग निश्चित होता है तब जितने वर्ष जितने महीने जितने घण्टों का भोग होता है उतने दिन कोई कितना ही भाग–दौड़ करता रहे, कोई सफलता नहीं मिलती।

ग्रहों की प्रतिकूलता में यदि कोई अपनी इच्छा से राजी–राजी दुःख को स्वीकार कर तप का संकल्प कर ले, परमात्मा का स्मरण

करते हुए सम और शान्त रहे तब अवश्य ही ग्रह दण्ड कम हो जाता है। इसीलिये भगवान की सम्मति है कि सर्दी–गर्मी में, सम्मान–अपमान में, लाभ–हानि में, सुसंयोग और वियोग में धैर्यपूर्वक सम रहो और देखते रहो कि जो कुछ भी आयेगा वह किसी दिन अवश्य ही जायेगा। ग्रहों की अनुकूलता–प्रतिकूलता, मूर्ख–विद्वान, असाधु–साधु, गृहस्थ–विरक्त, सन्यासी–भिखारी और धनवान, रंक और राजा सभी के सामने आती है। इसी को प्रारब्ध भोग कहते हैं।

किसी का मत है कि प्रारब्ध के भरोसे हाथ पर हाथ रखकर आलसी न बन कर प्रयत्न करना चाहिये, लेकिन प्रयत्न का यथार्थ ज्ञान भी होना चाहिये। इसीलिये तत्वदर्शी, परिणामदर्शी ज्ञानी महात्माओं का संग करना चाहिये।

घर में प्रारब्धवश आग लग गई है तब कूप खोदकर आग बुझाने का प्रयत्न मूर्खता ही है।

भगवान का निर्णय है कि तुम पहले ही समझ लो कि कर्म क्या है, अधर्म क्या है, विकर्म क्या है? ¼xhrk 4@17&18½

/;ku ;kx

Kkuoku Kku;KLFkk /;ku ;i fojki ;uA

txf}ftR; t;fr loR;kxd nf{k.k%AA

1– ज्ञानरूपी यज्ञशाला में स्थित होकर ध्यानरूपी स्तम्भ को नीचे गहरे खोद कर गाड़ो तथा संसार को जीत कर सर्व त्याग रूप दक्षिणा देकर परमोत्कृष्ट पद प्राप्त करो। ¼egf"k of'k"B½

2– यह भी गुरु निर्णय है कि ध्यान से खोदने पर ज्ञान में दर्शन होता है। आत्मा की कहीं विस्मृति न होना, ध्यान के द्वारा ही सम्भव है।

3– कोई साधक तल्लीनता तद्रूपता को ध्यान मानते हैं। कोई परिपूर्ण जागरुकता को ही ध्यान कहते हैं।

4– जब साधक पूर्ण शांत, मौन, संकल्परहित जीवन्त जाग्रत स्थिति में होता है तब ध्यान में होता है। कोई साधक मूर्ति को ध्यान से देखते हैं। कोई मूर्ति सम्बन्धित विचार करते हैं।

5– कोई श्वास को भीतर जाने को और बाहर आने को ध्यान से देखते हैं।

6– यह भी गुरु निर्णय है, तुम जितना ही संकल्परहित, विचाररहित, रिक्त–शून्य हो सकोगे उतना ही नित्य मुक्त असीम सत् परमात्मा से अभिन्नता का अनुभव करोगे।

7– मोहवश दुःख और द्वेष से मनुष्य का हृदय अपवित्र रहता है। आनन्द और प्रेम की प्राप्ति बाहर से नहीं होती। बाहर से, अन्य किसी वस्तु अथवा व्यक्ति से माना हुआ सुख मिलता है।

8– सुख क्षण स्थायी होता है। आनन्द अखण्ड होता है वह स्वयं में ही समाधि द्वारा सुलभ होता है।

9– जब स्वयं में चित्त शांत और शून्य होता है तभी समाधि होती है। इसीलिये चित्त की शांति को संभालना, निरन्तर जाग्रत रहकर देखते रहना अर्थात् सचेत रहना समाधि की साधना है। सजग और सचेत रहना ही ध्यान की सिद्धि है। कुछ करना ही, अहंकार के आगे जगत की ओर जाना है और कुछ न करना ही भीतर की ओर लौट कर देखना है। भीतर देखने की शक्ति ध्यान से आती है।

10– भगवान का निर्णय है कि आत्मस्थ होकर शांत रहो, किंचित भी अन्य का चिन्तन न करो। शांत मौन रहकर सामने जो हो रहा है उसे देखो, स्वयं कुछ भी न करो। कुछ करने का अभ्यास तथा अतीत की स्मृति एवं भविष्य का चिन्तन ध्यान में बाधक है।

11– भगवान का निर्णय है कि सब कर्मों को मन से परमात्मा में अर्पण करके परमात्मा के आश्रय में बुद्धि योग द्वारा निरन्तर चित्त को परमात्मा में लगाये रहो। ¼xhrk 18@57½

12– जो चित्त में इतना अधिक भर जाये कि बिना प्रयत्न के ही निरन्तर याद आती रहे, उसे चिन्तन कहते हैं।

मोही व्यक्ति के मन में प्रिय सम्बन्धीजनों के संयोग–वियोग से मिलने वाले सुख–दुःख का चिन्तन रहा करता है।

लोभीजनों के चित्त में धन, सम्पत्ति के लाभ या हानि का चिन्तन रहा करता है।

अहंकारी अभिमानी मनुष्य के चित्त में अपने सम्मान या अपमान का, अपनी कीर्ति या अपकीर्ति का चिन्तन रहा करता है।

कामी मनुष्य को विशेष भय रहता है अथवा किसी से द्वेष हो जाता है अथवा किसी से विशेष स्नेह हो जाता है, उसी का अनायास ही चिन्तन रहता है।

सदाचारी विद्वान सदा धर्म का चिन्तन करता है। श्रद्धायुक्त जिज्ञासु के चित्त में अपने श्रद्धास्पद गुरु का चिन्तन रहता है।

प्रेमी भक्त के मन में अपने भगवान का चिन्तन रहता है।

13– श्रीमद्‌भागवद्‌ का निर्णय है कि परमात्मा के सन्मुख होना जीवात्मा का धर्म है लेकिन अहंकार कभी धनमद के कारण, कभी विद्यामद्‌, जवानी का मद्‌ अथवा अधिकारमद के कारण परमात्मा से विमुख बना रहता है।

14– भगवान के कीर्तन गुणगान करने में कोई न कोई मद ही रोक देता है।

15– यह भी गुरु निर्देश है कि जब तुम किसी का अपमान करते हो अथवा क्रोध करते हो तब लोभी, अभिमानी अहंकार के वश में रह कर ही करते हो। क्रोध को, अपमान को गरीब बन कर सह लेते हो तब तुम्हारे पाप क्षीण होते हैं।

16– पारस से मिल कर लोहा सोना हो जाता है। परमात्मा नित्य सुलभ पारस है, यह अहंकार लोहे का गोला है। यह जब तक विषय वासनारूपी धूल से सना है तब तक सोना नहीं बन पाता।

17– जगत के स्मरण से अथवा विनाशी के सम्बन्ध से यदि मन बिगड़ गया है तब परमात्मा के स्मरण से ही यह सुन्दर हो सकता है। निष्काम परमेश्वर का स्मरण करने से जीवात्मा भी निष्काम हो जाता है, सकाम की संगति से कामी बन जाता है।

18– जब तुम प्रत्येक क्रिया को अथवा कर्म को ध्यान से नहीं देखते हो तो प्रमादी हो, क्योंकि प्रत्येक क्रिया को ध्यान से देखते रहना

विवके है। विवेकपूर्वक देखने के लिए जाग्रत रहो, तभी मुक्ति मिलेगी। जाग्रत रहने का अर्थ है जो कुछ वर्तमान में हो रहा हे उसे सजग रहकर देखो।

19– प्रातः जागते ही पशु–पक्षी भी बाहर भागने को सावधान होते हैं क्योंकि सभी सुख चाहते हैं। सुख की प्रतीति इन्द्रियों के सहारे मन के द्वारा बाहर ही होती है।

20– आनन्द की अनुभूति जब होती है तब भीतर होती है। इसीलिये साधक बाहर से भीतर की ओर लौटते हैं।

21– जब दृष्टि ब्रह्माकार हो जाती है तब जगत ब्रह्ममय दीखता है। यात्रा करते हुए जगत दृश्य दीखता है, स्थिर होने से ब्रह्म का अनुभव होता है।

22– शास्त्र तथा सन्त से सत्चर्चा–श्रवण से भ्रांति दूर होती है। मनन करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि आत्मा सत् है, ज्ञानस्वरूप है। बार–बार आत्मा के श्रवण से, मनन से, आत्माभ्यास से निश्चय हो जाता है कि आत्मा अनन्त है आनन्द ही है, वही 'मैं' हूँ। 'मैं' जड़ देहादि वस्तु नहीं हूँ।

23– आत्मा में बुद्धि का स्थिर होना ही सच्चा एकांत है। आत्मारूपी चेतन सिन्धु से ही अहंरूपी अणु का जन्म होता है।

24– देहादिक जड़ वस्तुओं से तादात्म्य टूट जाना त्याग है। आत्मभाव में रहना हृदय का ध्यान है।

'मैं' आत्मा ही हूँ– इस भाव की दृढ़ता से कर्म विकार शांत होते हैं। देह भाव की दृढ़ता में ही राग, द्वेषादि द्वन्द चलते रहते है।

25– दूसरों के देखा–देखी तुम पूजा–पाठ, जप की महिमा सुन कर भले ही फूल माला, अक्षत चन्दन चढ़ाते रहो, आरती की थाली में हजार–हजार बत्ती जलाते घुमाते रहो, इस प्रकार की पूजा भी शुभ कर्म है, पवित्र भावों की पुष्टि होती है। लेकिन भगवान जानते हैं कि यह पुजारी मुझे चाहता है या मुझसे कुछ सांसारिक लाभ चाहता है। यदि तुम सांसारिक धन भोग मान चाहते हो तो भगवान के प्रेमी नहीं हो। भगवान से सांसारिक इच्छाओं की पूर्ति भले ही हो जायेगी परन्तु प्रभु प्रेम की उपलब्धि, शांति आनन्द की अनुभूति नहीं होगी।

26– यदि तुम परमात्मा के ही प्रेमी हो तब तो भगवान का आदेश है कि तुम धीरे–धीरे क्रम–क्रम से सांसारिक सुखों से मन हटा कर धैर्ययुक्त बुद्धि द्वारा मन को नित्य प्राप्त परमात्मा में स्थिर करते रहो। आत्मा के अतिरिक्त अन्य विनाशी वस्तुओं के नाम रूप का चिन्तन न करो मन जहाँ–जहाँ चंचल हो, वहाँ से बार–बार आत्मा में ही लगाते रहो। ¼xhrk 6@25& 26½

27– जब तुम्हारा मन शांत रहेगा, पाप प्रवृत्ति से दूर रहेगा, रजोगुण शांत हो जायेगा तभी परमात्मा ब्रह्म के साथ एकता अभिन्नता का आनन्दानुभव होगा। ¼xhrk 6@37½

28– ध्यान से देखने वाले योगी को अवश्य ही प्रकृति का, विकृति का, अहंकृति का, संस्कृति का और ईश्वरीय कृतियों का ज्ञान होता है। वही सम्यक दर्शन से निरन्तर सावधान, सजग रह कर नित्य आत्मा परमात्मा का योगानुभव प्राप्त करता है।

29– ध्यान से देखते–देखते दिखने वाली प्रत्येक वस्तु के सत्य का ज्ञान होता है। ध्यान करने वाले सहस्रों मिलते हैं लेकिन ध्यान से देखने वाले कोई विरले ही होते हैं। आँखों से प्रत्येक व्यक्ति देखता है और देखी हुई वस्तु के विषय में सुन लेना ही ज्ञान मान लेता है। ऐसा ज्ञान किसी को भी बाल्याकाल से ही प्राप्त है लेकिन यह ज्ञान नहीं है, यह तो मानी हुई स्वीकृति है।

30– प्रत्येक मनुष्य सुने हुए को ही अपना ज्ञान मान लेता है। उसी ज्ञान का परिचय देता है कि मैं हिन्दू हूँ, मैं मुसलमान हूँ, मैं ईसाई हूँ, मैं सनातनधर्मी हूँ, मैं आर्य समाजी हूँ, सिक्ख हूँ या बौद्ध हूँ, जैनी हूँ, मैं ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य इत्यादि हूँ–यह सब सुने हुए की स्वीकृति है, मान लिया है परन्तु अपना ज्ञान नहीं है। आत्मा–ज्ञान में समस्त बन्धनों से मुक्ति मिलती है, लेकिन सुने हुये की स्वीकृति के ज्ञान से

मनुष्य अनेकों बन्धनों से जकड़ा हुआ है अशान्त है, आरक्षित है, भयातुर है।

31– ;g Hkh x# fu.k; g–यदि तुम्हें मन को स्थिर करना है तो मन को किसी केन्द्र में लगाना होगा। उसे /;kukH;kl कह सकते हो।

चित्त लेट कर दाहिने पैर के अंगूठे में दृष्टि स्थिर करो। इससे मन शीघ्र ही लय होगा।

मूलाधार चक्र में ध्यान अर्थात् मन लगाने से भी एकाग्रता हो जाती है।

स्वाधिष्ठान चक्र में कुण्डलिनी का ध्यान करने से सिद्धि मिलती है, आकर्षण शक्ति बढ़ जाती है। इसी प्रकार मणिपूर चक्र, नाभि में ध्यान जमाने की अथवा अनाहत हृदय चक्र में ध्यान जमाने से, ज्योति का ध्यान करने से सर्ववशी शक्ति आती है। इसी प्रकार तालू, मूल, कण्ठ, चक्र, ललना चक्र, आशाचक्र आदि केन्द्रों में ध्यान स्थिर करने से कई प्रकार की शक्ति प्राप्त होती है।

32– कुछ ध्यानाभ्यास ऐसे हैं जिनमें कल्पना करनी होती है। कुछ ध्यान ऐसे हैं जिनमें शान्त रहकर प्रतीक्षा करनी होती है।

33– एक ध्यान ऐसा है कि कुछ न करो, कल्पना न करो, केवल अपने को दृश्य से, दर्शन से, समेटते जाओ; दृष्टा होकर अपने को देखो कि 'मैं' ध्यान करने वाला अथवा ध्यान से देखने वाला कौन हूँ? कैसा हूँ? कहाँ हूँ?

34– ध्यान रखकर इस सत्य को बार बार स्मरण करो कि जिस देह को तुम अपनी मानते हो, वह तुम्हारी नहीं है, वह मिली है। जिस देह के साथ 'मैं' को मिला कर, न तद्रूप होकर उसके रंग–रूप को, अपना रूप मानते हो तथा जिसे देहों को तुम अपनी माता, भगिनी, पत्नी अथवा जिन देहों को, पिता, पुत्र, भाई आदि नाम दे रहो हो एवं जिसके साथ तुम अपना जन्म तथा अपनी मृत्यु मानते हो उसी देह को तत्वदर्शी जन पाँच तत्वों का ढाँचा अथवा नव द्वार वाली पुरी के रूप में देखते हैं।

35– यह भी गुरु सन्देश है कि तप, त्याग से शुद्ध चित्त वाले ध्यानयोगी इस भौतिक ढाँचे के भीतर ब्रह्मपुरी का दर्शन करते हैं और उस सुवर्णमय कोष में अत्यंत तेजयुक्त नित्य चैतन्य महादेव की उपासना करते हैं।

36– इस ब्रह्मपुरी में नव द्वारों का, आठ चक्रों का और उन चक्रों की अनन्त शक्ति का अनुभव करते हैं।

37– जिस प्रकार इन्द्रिय द्वारों से एक मार्ग संसार में जाता है, उसी प्रकार मन बुद्धि के पीछे एक मार्ग सत्य लोक के लिए भीतर से मिलता है। उस अन्तर पथ में ध्यानयोगी सद्गति परमगति प्राप्त करते हैं। तुम्हारी वृत्ति जब अन्तर्मुखी हो तब ध्यान को साधो, और जब रजोगुणी हो बहिर्मुखी हो तब निष्काम सेवा करो।

38– परम सत्य परमात्मा अमृत तत्व मनातीत है। वह तो ध्यान से जाना जाता है। जिस आनन्द की खोज में अहंकार व्यस्त रहता है वह तो आत्मा का स्वभाव ही है, स्वरूप ही है।

39– यह भी गुरु निर्देश है कि जो परमात्मा स्वयं से भिन्न नहीं है, वह आँखों से नहीं देखा जा सकता।

40– जो मन को लेकर चलता है वही गृहस्थ भोगी है, जो मन को छोड़कर चलता है वही योगी है, संन्यासी है।

41– चेतना से ही सम्बन्धाकार मन उत्पन्न होता है, पुनः वह मन बहुत ही श्रम सावधानी से चेतना में लीन होता है। संकल्पों का त्याग करने पर मन बुद्धि में लीन हो जाता है।

42– यदि स्मरण रख सको तो हानि–लाभ, दुःख–सुख आदि द्वन्दों में छः महीने तक सम रहने का अभ्यास करो, इससे योगाभ्यास होता है।

43– अहंकारवश तुम अपने को किसी वस्तु या व्यक्ति का स्वामी न मानो। जो तुम नहीं हो वह अपने को मान रहे हो–यही भ्रम है। ध्यान से इस भ्रम को देखो।

44– यदि तुम साधक हो तो मूर्ख, मूढ़ मनुष्यों की भाँति ऊपर की वेश–भूषा को तथा व्यवहार को आकर्षक मोहक न बना कर भीतर सद्‌गुणों की सुन्दरता को बढ़ाते जाओ।

45– तुम अज्ञान में वेदनाओं का भोग ही न करते हुए ज्ञान से वेदनाओं का समतापूर्वक देखते रहो। तुम भीतर कर्त्ता को जानो, स्वयं कर्त्ता न बनो।

46– जीवन में हर्ष और शोक के सहस्रों अवसर आते हैं और वह मूर्ख, मूढ़ मनुष्य पर ही प्रभाव डालते हैं, सम्यक् विद्वान पर नहीं डालते।

जिसकी बुद्धि धन–मद से, बल–मद से, पदाधिकार मद से मूर्छित हो रही है वही मूर्ख है और जिसका मन तन में, धन में, परिवार में सम्मोहित होकर अटक रहा है वही मूढ़ है। अपने को देखो, तुम में भी मूर्खता, मूढ़ता हो तो उसे पोषित न करो।

47– जब आत्म–ज्ञान द्वारा, परमात्मा के ध्यान द्वारा मृत्यु का भय, हानि का भय तथा वियोग का भय नहीं रहता तब उस पर किसी का बस नहीं चलता। किसी के बन्धन में वह नहीं रहता।

48– हजारों नरनारी मन्दिरों में, तीर्थों में दर्शन करने जाते हैं। सन्त महात्मा के दर्शन करते हुए पाप नाश की एवं बड़े फल की कल्पना करते हैं, परन्तु खेद की बात है कि वे अपने भीतर अहंकार को नहीं देख पाते।

अनेकों विद्वान, विदुषी नरनारी शिक्षित होने के पश्चात् एक ओर आत्म–कल्याण के लिए सत् कथा सुनते हैं, सन्तों का संग करते हैं, गुरु की सेवा करते हैं, अपने उद्धार के लिए पुण्य कर्म करते हैं, व्रत, तप, जप, पूजा, प्रार्थना, आराधना करते हैं, लेकिन साथ ही साथ जो न करना चाहिये उसे भी करते रहते हैं।

49– lk/kdk d fy, ;g Hkh x# fu.k; g %&

विचारों से मुक्त होने के लिये विवेकी साधक, विचारों को तटस्थ होकर देखते भर हैं, करते कुछ नहीं। विचारों एवं विकारों को देखते रहने से, अपने को कर्त्ता न मानने से वे विसर्जित हो जाते हैं, तभी अद्भुत शान्ति एवं मौन सहज हो जाता है। साधक कर्ता रहने तक दृष्टा नहीं होता। दृष्टा होने पर कर्त्ता नहीं रहता। कर्त्ता नहीं रहने पर भोक्ता नहीं होता।

50– तुम अपने ही विचारों के कारण ही दुःखी हो। भावनाओं के कारण अशान्त हो। कुछ करने की तथा किसी पद्धति को दुहराते

रहने की आदत बन गई है। करने से जो कुछ भी मिलेगा, उसे रखने में कदापि स्वतन्त्र नहीं हो।

51– तुम जिसे भुला नहीं सकते, हटा नहीं सकते, जिसे रोक नहीं सकते उसी के आधीन हो–इस पराधीनता को देखना ही स्वाधीन होने का मुहूर्त है।

52– ध्यान से देखने पर ही यह ज्ञात होता है कि जीने में, मरने में, श्वास लेने में तथा काम, क्रोध, लोभादि विकारों में, जाग्रत में स्वप्न में तुम स्वतन्त्र नहीं हो, सब यन्त्रवत चल रहा है। तुम मूर्खतावश ही अपने को कर्त्ता मानते हो।

53– यह भी गुरु निर्देश है कि साधक में जब ज्ञान दृष्टि खुल जाती है तब सभी आकारों में निराकार परमात्मा का बोध रहता है और पत्थर, वनस्पति तथा सभी प्राणी निराकार परमात्मा में दीखते हैं, तब प्रेम भाव से जो भी कर्म, वस्तु व्यक्ति के प्रति होता है वह भजन बन जाता है।

54– तुम भी स्मरण रखना कि जब तक सात्विक श्रद्धा नहीं होती, पाप प्रवत्ति नष्ट नहीं होती, संशय समाप्त नहीं होते, जब तक हाथ, पैर वाणी तथा मन सुसंयत नहीं होते, जब तक अविद्या अज्ञान से अहंकार स्वच्छन्द बना रहता है, तब तक तीर्थों में स्नान करते हुए,

जप, पाठ, पूजा, दान करने पर कुछ पुण्य तो बढ़ते हैं, कुछ पाप कटते हैं, परन्तु भजन पूर्ण नहीं होता, मुक्ति सुलभ नहीं होती।

55– आत्म ज्ञान के साथ श्रद्धापूर्वक सेवा, सम्मान तथा प्रीति कर्त्तव्यपरायणता तथा दान एवं निरन्तर स्मरण और ध्यान के द्वारा भजन पूर्ण होता है।

तुम कुछ तप, कीर्तन मात्र को ही भजन न मान लेना। अनेकों साधक कुछ जप आदि शुभ कर्मों को ही भजन मानते रहते हैं।

56– ;g Hkh x# vkn'k g कि यदि अपना और दूसरों का भला चाहते हो तो किसी का बुरा न चाहो, किसी को बुरा समझ कर निन्दा घृणा न करो, किसी की बुराई न करो, न सुनो। बहुत ही सजग रहने पर यह आदेश याद रहेगा।

57– जीव के सत्‌चित्त स्वरूप को जानो और परमेश्वर के सत्‌चित्त आनन्द स्वरूप को जानकर जातीय एकता का अनुभव करो।

58– चित्त की जहाँ कहीं एकाग्रता होगी वहीं सुखाभास होगा, यह सच्चा सुख नहीं होता।

जो चित्त जड़मय, देहमय बन रहा है वह ध्यान योग द्वारा जब चिन्मय हो जाता है तब योग सिद्धि में दुःख का अन्त होता है।

पाँच ज्ञानेन्द्रियों के पाँच विषयों में व्यस्त रहना ही चित्त का प्रपंची बने रहना है। प्रपंची चित्त ही परमार्थ में बाधक बनता है। अतः चित्त को ध्यान से देखते रहो।

59– जो करना चाहिये उसे पूर्ण कर दो तब जो होना चाहिये वह स्वतः ही हो जायेगा।

60– ;g Hkh x# funs'k gS कि प्रायः सभी के भीतर ऐसी आग लगी है जो बाहरी आँखों से नहीं दीखती और उसे बुझाने के लिये सभी प्राणी दौड़ रहे हैं, घोर श्रम कर रहे हैं। धन के द्वारा मान, यश, कीर्ति द्वारा संयोग भोग द्वारा विविध व्यसनों के द्वारा भीतर की आग को बुझाना चाहते हैं, परन्तु वह बुझ नही ंरही है।

61– यह गुरु सम्मति है कि आग को बुझाने का प्रयास न कर के तुम ध्यान योगरूपी द्वार से आग लगे भवन से बाहर हो जाओ।

62– ध्यान योगरूपी द्वार से बाहर होने के लिये शांत होकर अपने को भीतर समेटो और देखो कि मैं देह में, मन में, बुद्धि में, अहंकार में कहाँ हूँ! कैसा हूँ! प्रश्न करो और मौन हो जाओ। शांत शून्य प्रतीक्षा ही स्वयं को खोजने की गुरु प्रदत्त सुगम साधना है।

63– घर–परिवार, धन–वैभव छूटने पर भी विचार नहीं छूटते। विचारों से मुक्त होने पर उस सत्य का अनुभव होता है जो विचारों के मूल में,

विचारों के मध्य में और अन्त में नित्य आश्रय रूप में विद्यमान रहता है।

64— आत्मा का सहज स्वभाव है आनन्द, परन्तु यह अहंकार चाहता है सुख, अन्त में भोगता है दुःख, अहंकार ही सुख के लिये प्रिय सम्बन्धियों की परिक्रमा करता है, धन की परिक्रमा करता है। लोभी, मोही, सुखासक्त मनुष्य, तन द्वारा मन्दिर की परिक्रमा करता है, परन्तु मन द्वारा वस्तु व्यक्ति की ही परिक्रमा चलती रहती है।

65— भक्त ही भगवान की परिक्रमा करता है। परिक्रमा का अर्थ है चारों ओर घूमते हुए एक को ही देखना।

66— तत्ववेत्ता उत्तर, दक्षिण, पूर्व, पश्चिम जिधर जाता है, एक आत्मतत्व को ही देखता है।

भोगी, योगी, रागी, त्यागी, परिक्रमा एक ही तरह करते हैं लेकिन देखने में अन्तर है। अज्ञान में विनाशी की परिक्रमा होती है, ज्ञान में अविनाशी की परिक्रमा होती है।

67— मन को निरन्तर देखते रहना ही मन को विलीन करने की साधना है। मन का हृदय में विलीन होना सिद्धि है। संकल्पों का शांत हो जाना ही मन का विलीन होना है। मन के विलीन होने में प्राणायाम अथवा ध्यान सहायक साधन है।

68– साधना के द्वारा आध्यात्मिक विकास होने पर ही तुम दिव्य शक्तियों का उपयोग कर सकोगे।

69– किसी अन्य के द्वारा शक्ति प्राप्ति का महत्व न दो, योग के सहारे स्वयं में ही शक्ति स्रोत को खोदने का प्रयास करो।

70– जिस प्रकार विषय स्पर्श से दाद खुजलाने के समान सुख प्रतीत होता है, उसी प्रकार ब्रह्म संस्पर्श से परमानन्द का अनुभव होता है।

71– पापरहित होने पर निरन्तर आत्मा को परमात्मा में लगाये रहने पर ही ब्रह्म संस्पर्श सम्भव होता है।

72– अभिमानी, दम्भी, हिंसक, क्रोधी, कठोर, गुरुद्रोही, अश्रद्धालु, अपवित्र, चंचल, विषय–लोलुप, देह में आसक्त अहंकारी, वस्तुओं व्यक्तियों का रागी, विषम बुद्धियुक्त, द्वन्दों में आबद्ध, प्रपंची, मिथ्यादर्शी जन्म–मृत्यु, जरा–व्याधि को न देखने वाला मनुष्य पाप में अज्ञान में जीता है।

73– अज्ञान में गिरना होता है, ज्ञान में गिरने से बचना होता है। प्रेम में गिरने के स्थल को तोड़ देना होता है। छिलके से बचकर चले जाना ज्ञान है। छिलके को नष्ट कर देना प्रेम है। अज्ञानी उलझता है, ज्ञान में साधक सुलझता है, प्रेम में सुलझाता है।

74– संसार में प्रगति के लिये अहंकार को अधिकाधिक शिक्षित होना आवश्यक है और परमात्मा अर्थात् परमानन्द की अनुभूति के लिए अहंकार का विसर्जित होना अनिवार्य है।

75– सत्य को पाने के लिए निरन्तर अनित्य की, असत् की विस्मृति सत्य की स्मृति आवश्यक है। बाहर से जो कुछ छूट जाता है, छिन जाता है उसे भीतर मन से पकड़े रहने के कारण अपनत्व का सम्बन्ध जुड़ता रहता है, इसलिये उस मन से असंग होने के लिये सतत साधना आवश्यक है। ध्यान स्मृति ही साधना है।

76– मन से छूटने पर ही संन्यास पूर्ण होता है। चित्त के त्याग से ही शांति प्रवेश होता है। पाने के लिये छोड़ना अनिवार्य है।

77– जिसमें काम, क्रोध, लोभादि विकार नहीं होते, उसे किसी नियम में बँधने की आवश्यकता नहीं रहती।

78– तुम अपने को शुद्ध करने के लिये प्रार्थना, जप, ध्यान, वृत्तों को पूर्ण करो। इसके प्रभाव से दूसरे लोग भले ही अपने को न बदल सकेंगे, लेकिन तुम दूसरों को बदलने के लिये दूसरों के सुधार के लिये व्रत तप न करो।

79– जिस प्रकार किसी वृक्ष की गति, प्रगति, उन्नति अपने आप ही प्राकृतिक विधान से होती है, समयानुसार स्वतः उस वृक्ष में छिपे हुए फूल फल प्रगट होते हैं, उसी प्रकार तुम्हारे जीवन में स्वतः ही गति,

प्रगति, उन्नति, सद्‌गति, परमगति परम शांति प्रगट होती जाती है, तुम कर्त्ता न बनकर जो कुछ स्वतः हो रहा है उसके दृष्टा बनो, साक्षी होकर रहो।

80– ध्यान को लेकर तुम्हारा जन्म हुआ है। ध्यान तुम्हारा स्वभाव है। तुम ध्यान से देखो– अज्ञान में, प्रेम ही वस्तु से तन्मय होकर लोभ तथा व्यक्ति से तन्मय होकर मोह एवं सुख से मिलकर काम और अधिकार से मिलकर अभिमान बन गया है। जगत के प्रति प्रेम का प्रवाह राग में परिणत हो रहा है। भगवान के प्रति मुड़ जाने पर यही प्रेम अनुराग हो जाता है।

81– प्रेम की सीमा में बँध जाना ही बन्धन दुःखों का हेतु है। प्रेम की सीमा टूटते जाना परमात्मा में पहुँच जाना है। वस्तुओं से सम्बन्धित ज्ञान ही अहंकार का रूप ले रहा है। यही ज्ञान परमात्मामय होता है। यही प्रेम प्रभुमय हो जाता है जबकि यह प्रेम मातामय, पितामय, पत्नी, पुत्र–परिवारमय बन कर बन्धन दुःखों का कारण बना रहता है।

82– प्रज्ञा की जाग्रति से प्रेम की महिमा का बोध होता है। जब ज्ञान विषयों से छूट जाता है तब प्रज्ञा प्राप्त होती है। स्वयं के द्वारा स्वयं का बोध होना प्रज्ञा का चमत्कार है। स्वयं में सत्य परमात्मा का बोध ही प्रेम है। स्वयं में सत्य का बोध होने पर सब में सत्य आत्मा का बोध सुगम हो जाता है तभी प्रेम विभु हो जाता है–यह गुरु निर्णय है।

83– प्रमादी व्यक्ति जाग्रत रहने पर भी वर्तमान को नहीं देखतां काम क्रोधादि यन्त्रवत् चलते रहते हैं। प्रमादी व्यक्ति को अपनी निन्दा सुनकर क्रोध आता है, विवेकी प्रेमी साधक को गाली सुनकर करुणा उत्पन्न होती है।

84– सत्य परमात्मा की अनुभूति के लिये तुम प्रमाद का त्याग करो, विवेक में जागो, वर्तमान को देखो। संसार सागर में सत्संग द्वारा तैरना सीखो और परमात्मा की अनुभूति के लिये चेतना की गहराई में डूबना जान लो।

85– यह गुरु निर्देश हे कि सागर में तैरने के लिए अपने को खाली करना होगा और चेतना में डूबने के लिये प्रभु के प्रेम से स्वयं को भरना होगा। परमात्मा तक पहुँचने के लिये शून्यरूपी नौका ही एकमात्र साधन है।

86– भगवान का निर्णय है कि स्मरण चिन्तन के लिए चित्त को पूर्ण रूप से खाली कर लो, 'अनन्य चेता' अन्य कुछ भी न रहे जब ऐसे चित्त से चिन्तन स्मरण होता है तब परमप्रभु सुलभ दीखते हैं।

87– प्रभु का परमात्मा का स्मरण चिन्तन भी मनुष्य अपनी मान्यता के अनुसार ही करता है। भगवान के निर्णय अनुसार भगवान का चिन्तन स्मरण सर्व के आश्रय आत्मा के रूप में करो। आत्मा का कोई रूप

नाम नहीं है, वह आत्मा सभी नाम रूपों में प्रकाशित हो रहा है। वही सर्व प्रकाशक है।

88– अपनी मान्यता अनुसार जप, पूजा, पाठ आदि से पूर्णतया भय से चिन्ताओं से मुक्ति नहीं मिलती। आत्मा के बोध से ही तुम अभय हो सकते हो।

89– स्वतन्त्रता स्वाधीनता चाहने वाले लाखों मनुष्य यह नहीं जानते कि अपनी ही मान्यता मूढ़ता के कारण परतन्त्र पराधीन हो रहे हैं, फिर भी अपने को स्वतन्त्र मानते हैं। यह बहुत ही बड़ा दुर्भाग्य है।

90– यह भी गुरु सम्मति है कि जिस प्रकार तुम प्रकाश को या अंधकार को देखते हो उसी प्रकार दुःख को, सुख को, काम, क्रोध, लोभादि को देखो। यह भी सोचो कि जो भी आया है वह चला जायगा। अपमान को, हितकर जानकर सम्मान की भाँति स्वीकार कर लो उसे अपनी ओर से लौटाओ नहीं।

90– क्षुद्र की आकांक्षा से तुम महान से विमुख बने रहोगे, क्षुद्र सुख का भोग तुम्हें क्षुद्र बना देगा, उसी सुख की आसक्ति कभी दुःख देगी।

91– तुम मिली हुई शक्ति, सम्पत्ति, योग्यता का दुरुपयोग न करो। अपने से अधिक गरीब, अभाव से पीड़ितों की सहायता में सदुपयोग करो। लेकिन दैवी सम्पदा के बिना सम्पत्ति का सदुपयोग सम्भव नहीं

होता। तुम सेवा के लिए प्रीति, विवेक, उदारता, नम्रता, धैर्य, सहिष्णुता आदि दैवी सम्पदा को प्राप्त करो।

92– तुम्हीं ध्यान के केन्द्र हो, तुम्हीं हृदय हो, तुम केवल जीवन हो। तुम्हारी आत्मा ही ब्रह्म है। ब्रह्म से अहंकार उत्पन्न होता है, अहंकार से बुद्धि उत्पन्न होती है। इसीलिए अहंकार को पार न कर सकने से बुद्धि ब्रह्म को नहीं जान पाती।

93– बहुत कम पुण्यवान मिलते हैं जो ईश्वर को जानते हों तथा ईश्वर का ही सब कुछ मानते हों और ईश्वर के परम हितकारी वचन मानते हों।

94– लाखों व्यक्ति ईश्वर को अपने स्वार्थ–पूर्ति के लिए कल्पना के अनुसार मानते हैं। जो कुछ भी ईश्वर के विधान से मिला है उसे ईश्वर का न जान कर अपना ही मानते हैं और ईश्वर की रीति–नीति, प्रीति को न मानकर अपनी रीति–नीति, प्रीति के अनुसार ईश्वर से अपनी पूर्ति चाहते हैं। अपनी–अपनी पूर्ति के लिए ही प्रायः मन्दिर, गुरुद्वारे, चर्च, मस्जिद बना लिये हैं। किन्तु परमेश्वर की सत्ता से जो प्रत्येक प्राणी के निवास के लिए और ईश्वरीय सद्गुण ज्ञान, विकास के लिए, जो देहरूपी मन्दिर बने हुये हैं, बनते रहते हैं इन मन्दिरों में प्रतिष्ठित परमेश्वर को नहीं पहिचानते।

95– यह भी गुरु निर्णय है कि तुम परमात्मा को बाहर खोजने की अपेक्षा इस देहरूपी मन्दिर में, हृदय केन्द्र में खोज कर अनुभव करो, परमात्मा नित्य निरन्तर वहीं विद्यमान है।

96– जहाँ कुछ करना होता है वह ध्यान नहीं है। करना है तो सेवा करो, सुव्यवस्था करो, पवित्रता के लिए सब कुछ करो। स्वच्छता के लिए करो।

97– ध्यान के विषय में यह अद्भुत गुरु वाक्य है– सब विधि एवं पद्धतियों से थक कर स्वयं की चेतना के भीतर डूबना वह ध्यान है, वहीं नित्य निरन्तर प्राप्त सत्य परमात्मा का बोध होता है।

98– नेत्रों को बन्द करते ही भूताकाश के दृश्य नहीं दीखते तब चित्ताकाश में जो कुछ अंकित है वही दीखता है। चित्ताकाश के भीतर चिदाकाश में मन बुद्धि की गति समाप्त होती है, तभी 'मेरा' से रहित 'मैं' ध्यान योगी होता है। अकेले होने में, मेरा कुछ भी न दीखने में 'मैं' की सीमा मिटती है तभी ध्यान योग की सिद्धि होती है।

99– ध्यान योग में प्रेम करना नहीं होता, प्रत्युत ध्यान में प्रवेश होता है। तुम केवल तल्लीनता को ध्यान न मानो क्योंकि किसी रूप की अथवा शब्द की, दिव्य गन्ध की तल्लीनता में मन डूबता है। ध्यान की पूर्णता मन के पार जाने में होती है। तुम विषय तल्लीनता को ध्यान न मानते रहना।

100–जब तुम जाग्रत रहकर, जो कुछ भी हो रहा है उसे देख सकोगे और जब आत्म–स्मृति मात्र शेष रहेगी, तब ध्यान का महत् फल सत्य तत्त्व का बोध होगा।

101–यह भी गुरु निर्देश है कि जब तुम पूर्ण ब्रह्म को जानना चाहते हो तब उसी क्षण देखो कि जो ब्रह्म पूर्ण है उससे तुम कितनी दूर हो! सत्य ब्रह्म की अनुभूति में दो नहीं रह जाते। सत्य परमात्मा अनन्त है।

102–तुम कभी पत्थर के समान हो, तुम्हीं पत्थर में मूर्ति को उभारने वाले शिल्पी हो और कभी तुम स्वयं ही स्वयं के द्वारा निर्मित मूर्ति हो।

आँखों से दीखने वाले दृश्य को सत्य मानने वाले, तुम्हीं भौतिकवादी हो स्वयं के भीतर अलौकिक शक्तियों को जानने वाले तुम्हीं अधिदैविकवादी हो और स्वयं नित्य सत्य आत्मा की अनुभूति स्वरूप तुम्हीं अध्यात्मवादी हो।

103–तुम अपने विवेक में परमात्मा को पा सकते हो। अनेकों साधकों को इक्कीस दिन के कठिन उपवास के साथ काल्पनिक साकार रूप का चिन्तन, ध्यान कीर्तन करते रहने से दर्शन हो जाते हैं।

104–कोई साधक सात दिन में ही दिन–रात एकान्त में उपवासपूर्वक जप ध्यान से देवता का दर्शन पा जाते हैं, लेकिन भयातुर होने पर पागल भी हो जाते हैं।

105–मनुष्य में भाव की अद्भुत शक्ति है जिसे कोई विरले ही समझ पाते हैं।

106–;g Hkh x# fu.k; g%&

सम्बन्ध को लेकर ही मन की गति होती है, सम्बन्ध ही मन है। तुम्हारे सहयोग से ही मन चंचल होता है, असहयोग से मन स्थिर होता है। राग से मन की गति में तीव्रता आती है। किसी से प्रीति होने से राग बढ़ता है।

107–तुम्हारा दृष्टा होते ही मन की गति में शिथिलता आती है। कामी, क्रोधी मन को देखते रहो। तुम किसी वस्तु से नहीं बँधे हो। स्वयं को परमात्मा में लगाना ही सर्वोपरि पुण्य है। संसार में, विनाशी में लगना पाप है। पाप का परिणाम दुःख भोग है, पुण्य का फल आनन्दानुभूति है।

108–तुम्हारा मन बैठकर ध्यान से ऊबने लगे तब खड़े होकर ध्यान साधो, चल कर ध्यान साधो।

109–जिस प्रकार भूताकाश में आँखों के द्वारा अगणित दृश्य देखते हो एवं चित्ताकाश में कल्पित दृश्यों को देखते हो, उसी प्रकार ध्यान

से हृदयाकाश में चिदाकाश को देखो। हृदयाकाश में ही अनन्त परमात्मा का योगानुभव होता है।

हृदय ही एकान्त स्थान है। अकेलापन उदासी लाता है, एकान्त में शान्ति आनन्द की अनुभूति होती है। एकान्त वही है जहाँ किसी की याद नहीं आये। तीन महीने हृदय के एकान्त में चिदाकाश को ध्यान से देखो। कुछ लोग पहाड़ी में एकान्त गुहा खोदते हैं। तुम हृदय की गुहा को खोद लो, वही पूर्ण एकान्त है।

mifu"kn dk fu.k; g%&

110—आहत ध्वनि कुछ करने से ही होती है, अनाहत ध्वनि शून्य में उठती है। lkg अनाहत ध्वनि है, जो शान्त शून्य होने पर प्रगट होती है। प्राण अपान के साथ यह ध्वनि निरन्तर चलती रहती है। अवकाश पाते ही शांत होकर प्राणोपासना द्वारा इस ध्वनि को देखो। lkg lkg lkg dk ti प्राणों में चल रहा है।

अनाहत ध्वनि पर ध्यान देने से अनाहत चक्र की शक्ति जाग्रत होती है। आधार चक्र स्वाधिष्ठान चक्र, मणिपूरक (नाभि चक्र), अनाहत हृदय चक्र, विशुद्ध—कण्ठ चक्र, आज्ञा (भूमध्य चक्र सहस्रार मस्तिष्क चक्र—इन चक्रों पर जितना गम्भीर, स्थिर ध्यान होता है) उतनी ही तीव्रता से इनके अन्तर्गत रहने वाली दिव्य शक्तियाँ जाग्रत होती हैं। साधना की गतिविधि होती है, एक क्रम होता है लेकिन

ध्यान में अचानक विस्फोट होता है, अपने को कुछ करना नहीं पड़ता, केवल ध्यान से देखना होता है।

111–अपने में अपना होते हुए भी जिसकी याद नहीं रहती उसी को विस्मरण कहते हैं। जो अपना है, अपने में ही है, मैं उसी में हूँ–यह याद बनी रहे–इसी को स्मृति कहते हैं।

इसीलिये xhrk e dgk g& जब चित्त में अन्य की स्मृति नहीं रह जाती तब निरन्तर नित्य प्राप्त आत्मा की स्मृति रह जाती है, उसे ही परमात्मा सुलभ दीखता है, वही नित्य युक्त योगी होता है। ¼xhrk½

112–दृष्टि के सामने दृश्य न रह जाने पर ध्यान सहज होता है।

113–यह भी गुरु संकेत है कि यदि तुम वाह्य दृश्य पर ठहर जाते हो तो दृश्य सत्य तक नहीं पहुँच सकोगे।

अदृश्य की अनुभूति के लिए ध्यान से स्वयं में ठहरना पड़ता है, स्वयं में ही अदृश्य की अनुभूति को आत्मा कहते हैं।

114–यह भी जान लो कि कोई साधन ¬ अक्षर में, या काले बिन्दु में, या किसी पुष्प में अथवा किसी चित्र में अथवा स्वर्ण–चाँदी आदि की प्रतिमा में मन को स्थिर करने का अभ्यास करते हैं।

कोई साधक तरंगरहित जल को ही देखते हैं। कोई साधक दीपक की ज्योति में दृष्टि स्थिर करते हैं। कोई साधक शीतोष्ण वायु के स्पर्श में मन को लगाते हैं।

115–कोई साधक नाम जप में या नाद ध्वनि में चित्त लगा कर बैठते हैं–यह सब ध्यान नहीं है, इसे धारणा कहते हैं। धारणा द्वारा पापों का नाश होता है।

कोई साधक नाम की महिमा सुनकर नाम स्मरण के अभ्यासी हो जाते हैं। परन्तु पूर्ण सुमिरन वही है जहाँ 'मैं' मिट जाता है और पूर्ण रूप से भजन वही है जहाँ मेरापन मिट जाता है। प्रभु का नाम लेकर वही साधक प्रभु पद प्राप्त करते हैं जो संसार से कुछ नहीं चाहते।

116–ज्ञानाभिमानी भक्ति के अभिमानी, त्याग तप के अभिमानी किसी के द्वारा ठगे गए हैं वही अन्य सभी अभिमानी लोगों को ठगते रहते हैं। यह बहुत लम्बी परम्परा चल रही है। मानने वाले स्वयं विचार नहीं करते न दूसरों को करने देते हैं। जो स्वयं मान चुके हैं वही दूसरों को मनवाते हैं।

117–विश्वास में माना जाता है विचार द्वारा माने हुए को जाना जाता है और देखा जाता है। तुम विश्वास में ही ठहरो और निरीक्षण करो।

118—निर्णय कर लो कि जिस धर्म में सत्य का बोध नहीं वह यथार्थ धर्म नहीं है। जिस सत्य बोध से भय चिन्ता का अन्त न हो वह बोध नहीं है। जिस तप से दुर्बलताओं की निवृत्ति न हो तथा संयमित शक्ति न हो, वह सच्चा तप नहीं है। जिस भक्ति में भगवान से दूरी बनी रहे वह भक्ति नहीं है, जिस ज्ञान से बन्धनों से, मोहादि दोषों से मुक्ति न मिले वह ज्ञान नहीं है। जिस संन्यास में सरलता का सौन्दर्य न हो वह साधुता नहीं है।

जिस सन्तसंगति से मोह न मिटे, विवेक जाग्रत न हो, संशय भ्रम बना रहे वह सत्संग नहीं है।

जिस शिष्य में ज्ञान से योग न हो, अज्ञान बना रहे, वह श्रद्धावान शिष्य नहीं है।

जिस उपवास में परमात्मा आत्मा की निकटता अर्थात् एकता की अनुभूति न हो वह उपवास नहीं है।

जिस तीर्थ में दुःखों से न तरा जाये वह तीर्थ—सेवन नहीं है।

जो सेवक स्वामी की आज्ञा पालन में तत्पर न रहे, मन की ही मानता रहे वह सच्चा सेवक नहीं है।

जिस सेवा के पीछे लोभ, मोहादि विकार बने रहें, वह सच्ची सेवा नहीं है।

जिस पूजा में श्रद्धा, प्रीति, स्मरण, चिन्तन, ध्यान में दृढ़ता न हो, वह सच्ची पूजा नहीं है।

जिस प्रार्थना में अभाव की व्यथा एवं पाने की गहरी प्यास न हो, वह सच्ची प्रार्थना नहीं है।

जिस स्तुति में समर्थदाता की दया कृपा द्वारा प्राप्त वरदान से हृदय कृतकृत्य न हो, सन्तुष्ट तृप्त न हो अर्थात् महान की महिमा की प्रत्यक्ष अनुभूति न हो तो वह सच्ची स्तुति नहीं है। जिस ध्यान से दर्शनीय का तत्वतः ज्ञान न हो वह ध्यान नहीं है। जिस ज्ञान में सत्य–असत्य, नित्य–अनित्य का दर्शन नहीं हो वह ज्ञान नहीं है।

119–ध्यान से देखने वालों का यह गुरु निर्णय है– इस स्थूल देह में अन्नमय कोष, प्राणमय कोष है। सूक्ष्म शरीर में मनोमय कोष, विज्ञानमय कोष है। कारण शरीर में जीवनी शक्ति प्रदाता लिंग देह विज्ञानमय कोष है। इसी दुर्ग में विश्वनियन्ता परमेश्वर और जीवात्मा का निवास है।

120–परमगुरु भगवान का आश्वासन हैः–

efPpr% lo n|xkf.k eRil knkÙfj";flA
vFkp% Roegdkjk Uu Jk";fl fouM-{;flAA

मुझ परमात्मा में चित्त स्थिर करके कृपा प्रसाद से सर्व दुर्गों को पार कर जाओगे। यदि अहंकारवश नहीं सुनोगे तब तो विनाश का दुःख भोगना होगा। ¼xhrk½

121—यह भी गुरु निर्णय है कि ब्रह्म में ही प्रकृति है। प्रकृति में ही प्राण की परिधि है। प्राण में ही अहंकार का क्षेत्र है। अहंकार में ही चित्त है और चित्त के भीतर जीवात्मा चैतन्य ज्योति के रूप में स्फुटित हो रहा है। जीवात्मा अणु की भाँति है परमात्मा महान है।

122—शून्य शांत निराकार होने में ही परमानन्द मिलता है। यह भी गुरु आदेश हे कि वृत्तियों को देखते रहो—यही निरोध है। यदि उन्हें दमन करते हो तब निरोध नहीं है, उनका विरोध है। निष्काम होना ही परमात्मा में स्थिर होना है।

123—ध्यान में परिग्रह बाधक बनता है। तुम किसी वस्तु को अपनी न मानकर अपरिग्रही हो जाओ।

किसी को अपने अधीन न बनाकर स्वाधीन हो जाओ। नित्य चेतन ही तुम्हारा स्वभाव है। जो तुम्हें मिला है वही स्वभाव है। परमात्मा ही स्वभाव है। जगत का सम्बन्ध पर—भाव है। तुम पर को अन्य को अपना मानकर पराधीन न बनो परमात्मा की स्मृति में ही योग है। संसार की स्मृति में संयोग है। inkFkZ dk rFkk mldh 'kfä dk [kkstuk foKku gSA पदार्थ के पीछे परमात्मा को देखने

में योग है। योग से सांसारिक दुःख की निवृत्ति होती है। संयोग से सांसारिक सुख की प्रतीति होती है। अधिक नही ंतो 24 घन्टे में एक घन्टा ही घर के सूने स्थान में शान्त शून्य होकर रहो, नित्य नियम से बैठने से कुछ दिनों में अद्भुत अनुभूति होने लगेगी। यदि तुम कहते हो कि साधना के लिए समय नहीं है, परन्तु कभी–कभी तुम समय काटने के उपाय सोचते हो। यह गुरु सन्देश है कि ऐसा कोई दरिद्र मनुष्य नहीं होगा जिसके पास एक घन्टा समय न निकले। समय सभी गरीब धनवान को बराबर मिला है।

124–जब तुम्हारा बोलना, सुनना, लिखना, पढ़ना बन्द हो जाये तभी तुम सजग रहकर मन को, चित्त को तथा प्राण की गति को अथवा जो कुछ तुम्हारे किये बिना ही हो रहा हो, उसको देखते रहो–यही ध्यान की साधना है।

125–ijex# Hkxoku dh ;g lEefr gS %&

vkRe lLFk eu% dRok u fdpnfifpUr ;r(मन ही संसार का द्वार है। मन के आगे देखना संसार में रहना है, मन के पीछे देखना, परमात्मा में होना है।

126–यह भी गुरु निर्देश है कि भौतिक विज्ञानी, ब्रह्म अणु में अनन्त शक्ति की खोज करते हैं, उसी प्रकार अध्यात्म विज्ञान एवं ध्यान द्वारा तुम अहंरूपी अणु में परमात्मा को व्यापक अनुभव कर सकते हो।

127–तुम स्वयं देख सकते हो कि छोटी से छोटी और बड़ी से बड़ी गतियों का आरम्भ शून्य से होता है। महान नृत्य, संगीत, महाकाव्य शून्य मौन से ही उत्पन्न होते हैं।

128–अहंकार की गति, बुद्धि की तथा मन की गति, जहाँ से आरम्भ होती है, अथवा प्राण की गति का आरम्भ और अन्त जहाँ होता है, वहाँ ध्यान से शांत मौन होकर देखो। यह योगानुभूति की श्रमरहित साधना है।

129–इस देहरूपी पुरी में अज्ञानी–जन द्वारा दास बन कर रहते हैं, ज्ञानी महापुरुष सम्राट होकर रहते हैं।

130–इस ब्रह्मपुरी में शक्तियों का अकथनीय खजाना है। इसमें देवताओं का वास रहता है।

131–इसमें रहने वाले आत्मा को ही पुरुष कहते हैं। ज्ञान–विज्ञान के द्वारा जो इस पुरी के स्वामी आत्मा का अनुभव करता है अर्थात् जान लेता है, वह बन्धन से मुक्त हो जाता है, उसे ही महात्मा कहते हैं।

132–इस देह में 'मैं' को जानना ही सत्य को आत्मा को जानना है। अपने को न जानना ही अपना अज्ञान है। अपने को जान लेना ही ज्ञान है।

133—अपने अज्ञान में ही दुःख है। ज्ञान में ही दुःख का अन्त है। अपने को जानते ही इस देह में अपने को संगरहित निर्विकार, निर्विचार पाते ही, आनन्द सुलभ हो जाता है।

134— ; g Hkh x# fu.k; g& जो सभी के भीतर अविनाशी तत्व है, वही सच्चिदानन्द है। ध्यान से इसी को देखना है। तुम आत्मा के ज्ञान के लिये ध्यान में शांत हो जाओ, स्वयं कुछ न करो और जो बिना किये ही हो रहा है उसी प्रकृति विज्ञान को देखो। आरम्भ में प्राणों की गति को देखते रहो, ज्ञान में देखते हुए मुक्त हो जाओगे, प्रेम में होकर भक्त हो जाओगे, अज्ञान में मानते हुये बन्धन में पड़े रहोगे।

135—यह भी गुरु निर्णय है कि सभी प्राणी परमात्मा की लहर के समान परमात्मा में ही उत्पन्न होते हैं और लीन होते हैं। जिस प्रकार लहर गहरे में जाते ही सागर हो जाता है, उसी प्रकार चेतना की गहराई में उतरते ही परमात्मामय हो जाता है। परमात्मा इतना निकट है जितना सागर और लहर है। सागर से लहरें हैं परन्तु लहरों से सागर नहीं है। सागर के बिना लहरें नहीं हो सकतीं, लहरों के बिना सागर हो सकता है।

136—परमात्मा ने अपनी स्वतन्त्रता सभी को प्रदान कर दी है तभी तो सबके साथ होकर स्वतन्त्रता में बाधक नहीं बनता। प्राकृतिक विधान से भले ही दण्ड मिले परन्तु परमात्मा दण्ड नहीं देता।

137—यह भी गुरु संकेत है कि परमात्मा की अनुभूति के लिये तुम स्वतन्त्रतापूर्वक चाहे जब शून्य शांत निश्चिन्त हो जाओ, कुछ करने में व्यस्त न रहो।

138—यह भी गुरु आदेश है कि एक वर्ष प्रश्न न करके शांत रहो तो सभी प्रश्न समाप्त हो सकते हैं। प्रश्न के उत्तर मिलने से वह ज्ञान नहीं होता प्रत्युत प्रश्नों के समाप्त होने पर ज्ञान होता है। ज्ञान में अहंकार से विमुक्त होने पर, जीवन परमात्मा से संयुक्त दीखता है।

139—यदि तुम सच्चे साधक हो तो मन्दिर, गुरुद्वारे, गिरिजाघरों को ध्यान के ही स्थल बनाओ। वहाँ भिखारी न बने रहो।

140—गुरु वाक्यों से यह भी ज्ञात हो रहा है कि जो नित्य वर्तमान में है, उस क्षण को ध्यान से देखने पर उसका बोध होता है जो क्षण—क्षण के पीछे शाश्वत तत्व है, जिसमें कोई अभाव नहीं है वह परमात्मा है।

141—भूतकाल की याद और भविष्य की चिन्ता में वर्तमान की विस्मृति न होने पाये, इसके लिये हम साधकों को सावधान सजग रहना चाहिये।

142–साधकों को किसी भी साधन में नहीं अटक जाना चाहिये, क्योंकि जो साधन सिद्धि में सहायक होता है वही अटक जाने पर बाधक बन जाता है। यह गुरु निर्णय है कि मूढ़तावश अज्ञान में जो साधक यज्ञ, तप, जप, कीर्तन, पूजा, पाठ, प्रार्थना, ध्यान, ज्ञान, अध्ययन, दान, त्याग, संन्यास, धर्म सत्कर्म आदि के कर्त्ता बन कर अहंकार रूप में भोक्ता बन जाते हैं वही परम प्रभु के योगी नहीं हो पाते।

143–यह गुरु निर्देश है कि जब परम प्रभु का स्मरण हो, नाम जप हो तभी उसी क्षण कृपा का अनुभव करो। श्रद्धा, प्रेम, दया, करुणा, उदारता, सहिष्णुता, नम्रता आदि सद्‌गुणों की जाग्रति रहने तक प्रभु की कृपा के लिये कृतज्ञ बने रहो।

144– ;g Hkh x# vkn'k g& ज्यों ही मन बाहर जाये त्यों ही अन्तर्मुख करो। सुख की तृष्णावश ही मन बहिर्मुख रहता है। तुम स्वयं आनन्द हो, भ्रमवश आनन्द को बाहर खोज रहे हो। अज्ञान में ही बन्धन है, ज्ञान में ही मोक्ष है। आत्म–साक्षात्कार में अनन्त आनन्द है। शाश्वत सत्ता ही केवल आनन्द है।

145–वस्तु व्यक्ति तथा सुख की कामना के कारण ही मनुष्य दम्भी दुराग्रही बना रहता है।

146–आत्मा अनुग्रह स्वरूप है। आत्मा में ही सनातन सत्य हूँ। प्रेम ही आत्मा की धूप है, इस धूप में जो आलोकित होता है वही परम प्रिय प्रतीत होता है। तुम केवल प्रेम को देखो।

147–'मैं' का उदय जहाँ से हो रहा है, उस केन्द्र की खोज करो। खोज करने पर मैं का पता नहीं लगेगा।

आत्मा ही मैं के रूप में संकल्पाकार हो रहा है। आत्मा नित्य विद्यमान है। शुभ संकल्प भी आत्मा से भिन्न दिशा में ले जाते हैं। संकल्प के शान्त होने पर आत्मा का बोध होता है। अहंकार ही मनोमय हो जाता है, यहीं से संकल्प उत्पन्न होते हैं। वासना ही मन का क्षोभ है।

मैं का चिन्तन न करो, अनुभव करो कि 'मैं' हूँ। ऊपर–नीचे, आगे–पीछे कहीं जाओ, आत्मा वही है, एक ही है।

148–यदि तुम फल की आशा छोड़ दो और कर्म को प्रेमपूर्वक पूर्ण करते रहो तब तो कर्म के साथ ही उसी समय आनन्दरूपी फल प्राप्त हो जायेगा। भविष्य में मिलने वाले फल की पराधीनता नहीं रहेगी। तुम केवल कर्म से ही सन्तुष्ट रहो। स्वयं को कर्त्ता न मानकर प्रकृति को कर्त्ता देखो।

149–घड़े की आवश्यकता तभी तक होती है जब उसमें कुछ भरना होता है। उसी प्रकार देहरूपी घट की आवश्यकता तभी तक है जब

तक शून्य में कुछ भरना है। देहरूपी घट के भीतर चेतन आत्मा शून्य है, इस शून्य में संसार प्रपंच भर गया है। यदि भरना बन्द कर दो तो केवल निर्विकार, निराकार आत्मा ही शेष रह जाता है।

150—यह भी गुरु निर्णय है कि कुम्हार घड़े को बना सकता है परन्तु उसके भीतर शून्य को उत्पन्न नहीं कर सकता, वह तो है ही, उसे आकार से घेर देता है। घेरा टूट जाता है पर शून्य नहीं टूटता। वह तो है ही, उसे आकार से घेरे के भीतर सदा निर्विकार अक्षय रहा करता है। ध्यान योग द्वारा परमात्मा की अनुभूति होती है, इसीलिए ध्यान साधो।

151—ध्यान से देखने पर वस्तु के सत्य का ज्ञान होता है। देहादिक वस्तुओं से अपने को भिन्न जानकर चेतना में प्रतिष्ठित होने में ध्यान सधता है।

152—जहाँ संसार दीखता है वहीं अदृश्य परमात्मा विद्यमान है। जहाँ केवल परमात्मा का ही बोध होता है वहाँ अव्यक्त संसार भी छिपा है। अदृश्य ही दृश्य होता है और दृश्य ही अदृश्य हो जाता है।

153—ध्यान से ज्ञान द्वारा यह जाना जाता है कि भेद और भिन्नता के होते हुए भी सत्ता अखण्ड है। ध्यान से देखने पर ही यह ज्ञान होता है कि अपनी देह में जैसा ज्ञानस्वरूप आत्मा है वैसा ही दूसरों की देह में भी है। तुम अपने प्रत्येक सम्बन्धीजनों के साथ अपने ऊपर

पड़ने वाले प्रभाव को देखते चलो, इसी प्रकार आत्म–ध्यान होता जायेगा।

n"Vk dfo dk fu.kZ; gS%&

जहाँ देखता तुम ही तुम हो।
जगती के कण–कण में व्यापक, एक तुम्हारी छवि की छाया।
अणु–अणु में माया महान की, बिन्दु–बिन्दु में सिन्धु समाया।
तुम महान कानन उपवन तरु, कोमल किसलय कलित कुसुम हो।।
कौन प्रातः उठकर प्राची में, है बिखेरता स्वर्णिम लाली।
कौन सजाता रात गगन में, नक्षत्रों की नित्य दिवाली।
सन्ध्या के कपोल में कर से तुम्हीं लगाते नव कुमकुम हो।।
जड़ चेतन स्थावर जंगम खग मृग कीट पतंग भुजंगम।
सब में सत्ता एक सत्य की, एक चेतना का शुचि संगम।
गाते सदा अनाहत स्वर में, साम गान बैठे गुमसुम हो।।
भाव–अभाव शुभाशुभ सुख–दुःख, ये सब केवल शब्द जाल हैं।
एक अछेद्य, अभेद्य वृक्ष के, रंग–बिरंगे विटप डाल हैं।
और तुम्ही सबकी मनवांछा के पूरक वह कल्पद्रुम हो।।
सुधा मात्र यदि तुम वसुधा पर, काल कहाँ से कैसे आया।
सत् से असत् अचेतन चित् से, तप प्रकाश से भिन्न न पाया।
सृष्टि प्रलय हैं खेल तुम्हारे, तुम्हीं प्रकट हो तुम ही गुम हो।।

————

mikL; vkj mikluk

महर्षि वशिष्ठ जी को कागभुषुण्डी जी ने बताया है कि जिस प्रकार पुष्प में सुगन्ध रहता है, उसी प्रकार प्राण के भीतर रहने वाले चिदात्मा की हम उपासना करते हैं। वह अद्‌भुत चिदात्मा न सजीव है, न ही निर्जीव है।

जिस प्रकार जल के भीतर माधुर्य रहता है, उसी प्रकार अपान के भीतर रहने वाले चिदात्मा की हम उपासना करते हैं। जो मन, चित्त, बुद्धि, अहंकार के व्यापार में निमित्त है उस चिदात्मा की हम लोग उपासना करते हैं।

जिसमें समस्त पदार्थ विद्यमान हैं, जिसमें सब कुछ उत्पन्न हुआ है, जो सर्वमय है, चारों ओर स्थित है, जो सर्वात्मक है, जो सूर्य, चन्द्रादि का अवभासक है, जो सब में पवित्र पुण्य रूप है, जो समस्त कल्पना कलंकों से मुक्त है, जहाँ प्राण अपान दोनों उत्पन्न नहीं होते, जो प्रणापान की शक्ति है, जो प्राणोपासना से प्राप्तव्य है उस चित्त तत्व की हम उपासना करते हैं। ¼;k0 ok0½

ब्रह्मा से लेकर तृणपर्यन्त पदार्थ समूह में सत्ता सामान्य रूप से जो स्थित है, विद्वान उसे ही आत्मा जानते हैं।

हम साधकों को सदा सावधान रह कर मन को देखते रहना चाहिए। लेकिन देखते रहने का स्मरण नहीं रहता। आरम्भ से एक मिनट भी देखना कठिनतर मालूम देता है, इसलिए परम योगी भुशुण्डी जी का निर्णय है कि प्राणापान को देखते रहने से परमतत्व के साक्षात्कार से समस्त शोकों से मुक्ति मिल जाती है, परमपद की प्राप्ति हो जाती है। भुशुण्डी जी कहते हैं कि मैं कभी बीते हुए की तथा भविष्य की चिन्ता नहीं करता। एकमात्र नित्य वर्तमान स्वभाव में साक्षी चैतन्यस्वरूप दृष्टि का अवलम्बन कर स्थित हूँ। ¼;kx ok0½

हम साधकों के लिये प्राणोपासना बहुत ही सुगम है, परन्तु स्मरण रखना कठिन है, क्योंकि अहंकार की वृत्तियाँ साधन में बाधक हैं।

प्राणोपासना के लिए विशुद्ध बुद्धि, एकान्त सेवन, अल्पाहार के साथ मन, वाणी, शरीर को वश में रखना आवश्यक है और राग, द्वेष को नष्ट कर के अहंकार, बल का घमण्ड, काम, क्रोध, लोभ से छूटना भी आवश्यक है। सदा प्रसन्न रहना, शोक से चिन्ता से मुक्त, इच्छाओं से रहित होना भी आवश्यक है। ¼xhrk½

ije xq# Hkxoku dk fu.kZ; gS%&

vga loZ"kq Hkwrs"kq HkwrkRekofLFkr% lnkA

reoKk; eka eR;% dq#rs·pkZ foMEcueAA

मैं समस्त प्राणियों में उनकी आत्मा के रूप में सदा स्थित रहता हूँ। मेरे उस स्वरूप का तिरस्कार करके मनुष्य पूजा की विडम्बना करता है।

;k ek lo"k Hkr"k lUr ekRekuef'ojeA
fgRokpk Hkt r ek<;knHkLeU;o tgkfr l%AA

जो समस्त प्राणियों की आत्मा रूप में स्थित मुझ ईश्वर को छोड़कर पूजा करता है वह मूर्खतावश राख की ढेरी में ही हवन करता है।

f}"kr% ij dk; ek ekfuuk fHkUu nf'kuu%A
Hkr"k o) ojL; u eu% 'kkfUr ePNfrAA

जो एक शरीर में अभिमान होने के कारण अपने को अलग समझता है और दूसरे शरीर में स्थित मुझ आत्मा से द्वेष करता है उन प्राणियों से बैर भाव रखने वाले पुरुष का मन कभी शान्त नहीं होता।

जो प्राणियों में सत्य आत्मा को न जानकर उनका अपमान करता है, उस मनुष्य की बहुत मूल्यवान सामग्री द्वारा होने वाली पूजा से परमेश्वर प्रसन्न नहीं होता।

¼Hkkxor 3@29@21 l 24½

rLekr lo"k Hkr"k HkrkRek d rky ;eA
vgo)ku ekukH;k e=;kfHkUu p{k"kkAA
¼Hkkxor 7@6@24½

इसलिये सम्पूर्ण प्राणियों के भीतर उनके आत्मा के रूप में बैठे हुए परमात्मा की सेवा उन्हें इच्छित वस्तु देकर करनी चाहिये। दान का सामर्थ्य न हो तो उनका सम्मान करना चाहिये, मित्र भाव से भेद दृष्टि का त्याग कर देना चाहिये।

जब तक विनाशी शरीरों में अविनाशी आत्मा का ध्यान नहीं होता तब तक ईर्ष्या, द्वेष, कलह, क्रोध, निन्दा, घृणा, हिंसा आदि पाप प्रवृत्तियों का अन्त नहीं होता। आत्मा के अज्ञान में ही समस्त पाप चलते रहते हैं।

पूजा, पाठ, जप, तप, व्रत, तीर्थ, दान भी चाहते हैं और अहंकार की सीमा में पाप भी चलते रहते हैं। गुरु निर्णय है कि तुम ध्यान से अज्ञानी अहंकार के पापों को देखते रहो स्वयं कर्त्ता न बनो। ध्यान से प्राणों के पीछे, मन के पीछे, बुद्धि के पीछे, उसे खोज लो, जो सत् है चेतन है वही तुम हो।

;g Hkh x# fu.k; g :–

समता के लिए सब में एक आत्मा का ज्ञान और सर्वहित के लिये सभी आत्माओं के प्रति निष्काम प्रेम आवश्यक है।

तुम निर्णय करो कहीं अविवेकवश जप, कीर्तन, पाठ, पूजा आदि शुभ कार्य अथवा शास्त्राध्ययन द्वारा बौद्धिक ज्ञान और माने हुए ध्यानाभ्यास में ही अहंकार को सन्तुष्ट करते रहोगे तब वासना की पूर्ति भले ही होती रहे लेकिन परमात्मा की उपासना नहीं हो पायेगी। यदि तुम देह के प्रति आसक्ति नहीं छोड़ सकोगे तब दैव पूजा से वंचित रहोगे। देह की आसक्तिवश देह का ही पक्ष लेने से सूक्ष्म शरीर दोषी बना रहता है। दोषी व्यक्ति की पूजा कुछ नहीं होती। देह की पुष्टि का पक्ष लेते रहोगे तो सूक्ष्म देहाभिमानी 'मैं' हिंसक बना रहेगां जब तक देह को सुखी रखने का पक्ष लोगे तब तक सुखासक्त, अहंकार, अन्यायी धर्मविमुख बना रहेगा।

जिस देह को तुम अपनी मानते हो वह जन्मती है अपने आप ही विधिवत नियम से बढ़ती है, बदलती है, फिर न चाहते हुए घटती वृहद होती है और जीवात्मा से सम्बन्ध टूटने पर नष्ट हो जाती है। देहरूपी मिट्‌टी के दीपक से तुम चेतनस्वरूप ज्योति के समान प्रकाशित हो रहे हो। देह से तुम्हारी जातीय एकता नहीं है। इस सत्य को मानो नहीं, जानो और देखो।

यह गुरु निर्णय है कि परमात्मा को पाने के सभी मार्गों को छोड़ देना ही परमात्मा के पाने का सरल उपाय है, जिसमें किंचित भी चलना नहीं पड़ता। सभी मार्ग चलने के लिए प्रेरित करते हैं, केवल सब कुछ धारण करने वाला धर्म ही ठहरने के लिए, शांत होने के लिये सावधान करता है।

साधक परमात्मा की खोज में चतुर्दिक भाग रहा है और परमात्मा अपने दर्शन करने वालों को खोज रहा है। परमात्मा को सभी भक्त भागते हुए दिखाई देते हैं, दर्शन के लिये ठहरने वाला कोई कभी मिल पाता है। परमात्मा उसी की प्रतीक्षा करता है जो खड़ा हो जाता है, उसे ही दर्शन हो जाते हैं। जहाँ तुम अकेले ठहर जाओगे और कोई नहीं होगा, अन्य कुछ भी नही होगा वहीं परमात्मा का होना दिखेगा।

;g Hkh x# fun'k g–जो नहीं है, उस झूठे 'मैं' में सत्य परमात्मा के दर्शन की अभिलाषा है। झूठ को भला सत्य के दर्शन कैसे हो सकते हैं?

इस देह में तुम क्या हो कहाँ हो इसकी खोज करो। जो यहीं है, अभी है, उसकी खोज अन्यत्र करना भूल है, भ्रम है।

जो निरन्तर है उसका संग ही सत्संग है।

जो निरन्तर है, सर्वत्र है, सबका है, वह सत् है, उसमें होना ही सत्संग है, उस सत् का स्मरण ही उसके योग की साधना है।

जो निरन्तर घूम रहा है वह संसार है, और जिस आश्रय में घूम रहा है वह परमात्मा है। संसार है इसीलिये परमात्मा सिद्ध होता है, परमात्मा है तभी संसार दीखता है।

;g Hkh x# fun'k g–कि स्वयं में होना ही परमात्मा के निकट वास अर्थात् यही उपवास है। मन के साथ वासना है, आत्मा के साथ उपासना है।

वासना, कामना की पूर्ति करने में श्रम है, थकावट है, भोग है, उपासना पूर्ण होने में विश्राम है, योग है।

वासना कामना का भोगी परतन्त्र रहता है, उपासना का योगी स्वतन्त्र होता है।

उपासना में दूरी नहीं रह जाती। दूरी तभी नहीं रहती जब नित्य प्राप्त प्रभु में ही आत्मीयता दृढ़ होती है। आत्मीयता तभी दृढ़ होती है जब अनेक में बिखरी प्रीति एक प्रियतम में ही केन्द्रित होती है।

जो अपने पूरे ऐश्वर्य में प्रगट होता है, वही ईश्वर है। गुरु निर्णयानुसार चेतना का अवतरण ही अवतार है। कुछ भक्त अपने–अपने भगवान के भिन्न–भिन्न लोक मानते हैं। कोई तत्वदर्शी

कहते हैं कि भगवान कहीं नहीं है, भक्ति के कारण भावनाकार में प्रेम तत्व प्रगट हो जाता है। भक्तिपूर्ण हृदय समस्त जगत को भगवानमय देखता है, लेकिन कठोर अहंकार जगत को जड़ ही देखता है। जगत में वही दीखेगा जैसे तुम होगे। जब अपने भीतर भगवान दीखते हैं तब बाहर सभी में भगवान दीखते हैं। साधना द्वारा तुम में जितनी अधिक विनम्रता, पवित्रता, सरलता बढ़ती जायेगी उतनी ही प्रभु दर्शन की पात्रता आती जायेगी। साधना में प्रभु को पाने की अभिलाषा रहती है। उपासना में सब कुछ खोने की उत्सुकता रहती है। जिस दिन तुम कुछ भी नहीं रह जाओगे उस दिन उपासना पूर्ण होगी।

कुछ होना ही बर्फ की भाँति कठोर बने रहना है, कुछ न होना ही बर्फ की भाँति पिघल जाना है। साधक कुछ होता है, उपासक कुछ नहीं होता है।

हृदय द्वारा खुलने पर जब तुम निष्क्रिय प्रतीक्षा करोगे तब परमात्मा उसी क्षण उपस्थित मिलेगा।

;g Hkh x# fun'k g–

उपासक कहीं जाता ही नहीं, कहीं पहुँचता नहीं, वह जहाँ होता है वहीं परमात्मा को पा जाता है।

साक्षी दृष्टा के समक्ष भी द्वैत बना रहता है।

दो मिटे बिना प्रेम पूर्ण परितृप्त नहीं होता।

चाहे जितना निकटतम सम्बन्ध गहरा हो फिर भी दो बने ही रहते हैं। आसक्ति में तो सम्बन्ध है, मन से विरक्ति आने पर भी सम्बन्ध बना रहता है अनासक्ति में सम्बन्ध नहीं रहता। चेतना नित्य अनासक्त है।

अचिन्त्य में पहुँचने के लिये गम्भीर चिन्तन साधना है।

;g Hkh x# fun'k g–कि लहर की भाँति नाचते हुये सभी व्यक्ति अपने परमाश्रय परमात्मा रूपी सागर को भूल जाते हैं। तुम बार–बार चिन्तन करो कि हम अनन्त सागर में लहर की भाँति निरन्तर अभिन्न ही हैं।

;g Hkh x# fu.k; g कि जिस प्रकार पानी का स्रोत सभी जगह है, उसी प्रकार ऐसा कोई स्थान नहीं जहाँ परमात्मा न हो।

जिस प्रकार पानी का स्रोत पाने के लिए मिट्टी, कंकड़, पत्थर, वायु हटानी पड़ती है क्योंकि स्रोत तक पहुँचने के प्रथम यही सब मिलते हैं, इसी प्रकार कहीं भी परमात्मा को देखने के प्रथम त्वचा, हाड़, मांस, अहंकार, लोभ, सहिष्णुता, प्रीति, दया, करुणा आदि सद्गुण मिलते हैं। इस प्रकार अनेकों शुभाशुभ तथा दोषों सद्गुणों के पश्चात् गुणातीत द्वन्दातीत परमात्मा मिलता है।

गुरु निर्णय से ज्ञात हो रहा है कि उपासना किसी मूर्ति में पत्र–पुष्प चढ़ाते रहने से पूरी नहीं होती। उपासना, परमात्मा से दूरी मिटाने की सरलतम विधि है।

कठोर अहंकार उपासना को पूर्ण नहीं कर पाता। श्रद्धायुक्त साधना से कठोरता तपती है पिघलती है फिर उपासना से साधक का अहंकार गलता है मिटता है। अहंकार मिटना ही उपासना की पूर्णता है।

गुरु निर्णयानुसार कहीं जाकर साधक जिस प्रभु को पाता है, उपासक जहाँ है वहीं प्राप्त देखता है। साधक जिसे साधता है, उपासक उसे स्वतः सधा हुआ देखता है। साधक जहाँ साधन से पहुँचता है, उपासक वहीं प्रथम ही पहुँचा हुआ अनुभव करता है।

;g Hkh x# fu.k; g कि तुम ध्यान से देखो, तुम्हीं ध्यान हो, तुम्हीं प्रेम हो, तुम्हीं ज्ञान हो।

वासना, कामना से मुक्त होने पर तुम धनी हो। वासना, कामना के रहते महाराजा भी गरीब ही रहता है।

दुःखी होकर संन्यासी होने वाले बहुत मिलेंगे, लेकिन आनन्द में रहकर संन्यासी होने वाले की खोज करो।

परिवार को दुःखदायी मानकर संन्यासी अधिक मिलते हैं, सारे जगत को परिवार समझकर संन्यासी होने वाले का पता लगाओ।

जिस सुख को व्यर्थ कहा जाता है उसे छोड़ना भी व्यर्थ ही है और जिस दुःख को झूठा माना जाता है उससे भागना भी निरर्थक ही है। सुख से दुःख को असार समझकर संन्यास पूर्ण करने वाला ही सम्यक्दर्शी महापुरुष होता है।

आत्मा नित्य शुद्ध बुद्ध निर्विकार अस्तित्व है। यह आत्मा अहंकार के गलने पर अनावृत होता है अर्थात् वही शेष रह जाता है– यह गुरु निर्णय है।

ज्ञेय और ज्ञाता से मुक्त ज्ञान ही आत्मा है। असीम और अनन्त चेतना ही स्वरूप है।

सीमा के भीतर दुःख है, असीम में ही आनन्द है। असीम में होने के लिये सीमाओं को तोड़ना होता है।

असीम चेतनस्वरूप ही अज्ञान में सीमाबद्ध बन जाता है। आत्म–ज्ञान में ही जीव को विश्राम सुलभ होता है। आत्म–ज्ञान की पूर्णता में परिग्रह की आदत मिटती है।

दूसरों के अथवा अन्य के ज्ञान से जो ज्ञानी बनता है वह अहंकार ही है। अज्ञान को ही मुख्य पाप कहा गया है। ज्ञान उसे ही कहते हैं जो सब कुछ को प्रकाशित करता रहे।

यह भी गुरु सम्मति है कि अपने में उतरो, गहरे उतरो, वहीं परमप्रभु को पा सकोगे। जहाँ अन्य कोई नहीं रह जाता, वहीं सच्चिदानन्द प्रभु विद्यमान मिलता है।

परमात्मा के अति निकटतम कोई है तो वह तुम्हीं हो, तुमसे अधिक निकट अन्य कुछ नहीं हो सकता। अतः तुम देखो कि इसी क्षण तुम्हारे साथ क्या है? तुम अपने रूप में ही भगवान की उपासना करके देखो।

भारत में अनेकों महापुरुषों को साम्राज्य व्यर्थ प्रतीत हुआ, वहीं पर करोड़ों लोभियों को अपनी अटैची बहुत बड़ी सम्पत्ति प्रतीत होती है।

तुम कहीं कर्त्ता न बनकर प्रकृति द्वारा सब कुछ होते हुए देखो, अकर्त्ता भाव से प्रतिष्ठित रहना ही योग है।

अज्ञान में तुमने धन पाने को, सम्मान पाने को, संयोग पाने को, इच्छित सुख पाने को सौभाग्य माना है। लेकिन इससे बड़ा सौभाग्य तब होता है जब धनमान, भोग, संयोग सुख समाप्त हो जाते हैं, जब कोई मार्ग ही नहीं रह जाता है, पूर्ण निराशा की घड़ियाँ आती हैं जब

कुछ करने की, कहीं जाने की, किसी के आने की, कुछ पाने की आशा ही नहीं रह जाती है, जब स्वतः ठहरना होता है तभी उसका दर्शन होता है जो सदा से निरन्तर विद्यमान है।

जब तक तुम दौड़ रहे हो, कुछ पाने की आशा में किसी का सहारा ले रहे हो, नये–नये साधन खोज रहे हो, तब तक उसे नहीं देख पाते जो तुम्हारे चारों ओर है, जिससे तुम निरन्तर घिरे हो, उसी में हो, जिसे तुम क्षण भर ठहर कर देखने को सावधान नहीं हो।

अपने शुद्ध अस्तित्व की विस्मृति ही अज्ञान है।

केवल सत्य चेतना ही ज्ञान स्वरूप है, वही आत्मा है।

देहभाव से न रहकर आत्मभाव से रहना अति सरल साधना है।

संकल्प शांत होने पर मन आत्मामय हो जाता है।

संकल्प उठने पर जीवात्मा मनोमय बन जाता है।

यह जगत आत्मा का ही विराट रूप है।

आत्मा से ही 'मैं' का प्रवाह चल रहा है।

नाम रूप की सीमा से आबद्ध आत्म–ज्ञान ही अहंकार है।

नाम रूप की सीमा से मुक्त, असीम अनन्त परमात्मा है।

नित्य जीवन ही आत्मा है।

संकल्पों को न उठने देना आत्मा का ध्यानाभ्यास है।

शांत, मौन, निस्संकल्पना सध जाने पर आत्मानुभव होता है।

मन शुद्ध ही है, किन्तु विषयों के संग से दूषित हो जाता है।

केवल चैतन्य ही सत्य है, उसका स्वरूप आनन्द है।

संकल्परहित आन्तरिक चैतन्य ही सर्व में व्यापक परमात्मा है।

अहंकार ही जीव है। जीव का जीवन, आत्मा से ही प्रवाहित है।

स्वयं के अस्तित्व का बोध ही स्वरूप बोध है।

प्रेम ही आत्मा का प्रकाश है। अधोमुखी प्रेम देह में उतर कर काम बन जाता है। ऊर्ध्वमुखी काम आत्मा में स्थिर होकर प्रेम हो जाता है।

b'ojk u egk c)s njs u p lnyHk%A
egkck/k e;dkRek LokReo ije'oj%AA

b'oj u rk njh ij g vkj u vR;Ur nyHk g] egkck/k :i ,d jl viuh vkRek gh ije'oj gA

rLeS loZ rr% loZ l loZ loZr'p l%A
lks·Ur% loZ e;ks fuR;a rLeS lokZReus ue%AA

सब कुछ आत्मा के लिये है, उसी से सब कुछ हुआ है, वही सनातन है, उस आत्म रूप परमात्मा को नमस्कार है।

¼egf"kZ of'k"B½

आत्मा परमात्मा की निरन्तर अभिन्नता का अनुभव करना ही उपासना है।

lrra dhrZ;Urks eka ;rUr'p n`<ozrk%A
ueL;Ur'p eka Hkä;k fuR; ;qäk mikl rsAA

दृढ़व्रती उपासक निरन्तर परमात्मा की महिमा का कीर्तन करते हुए तथा यत्नपूर्वक परमात्मा को ही सर्वत्र प्रणाम करते हुए नित्य युक्त रहकर अनन्य भक्ति से परमात्मा की ही उपासना करते हैं।

¼xhrk 9@14½

foosdh ekuo

os ohj foosdh ekuo gSa] tks eksg&uhan ls tkx ldsA

mudsa gh nq%[k feVsaxs] tks fuR; d`r nks"kksa dk R;kx ldsaAA

os Jeh lq;eh gksrs gSa] os 'kqHk deZ ln~xfr ikrsA

tks 'kfä le; dk lnqi;ksx dj] Hkksx&Hkwfe ls Hkkx ldsAA

cspSu cukrh tks lcdks] og fpUrk mudh feV tkrhA

ftudk fpÙk pkgeqä gksdj] gfj dks fpUru esa yxk ldsAA

gS lk/kd dk iq#"kkFkZ ;gh] lkjh nqcZyrk,¡ rt nsA

dkeukjfgr gksdj tks viuk] ân; izhfr ls ikx ldsAA

lcdk nkrk txnh'oj gS] iqjh gksrh lcds eu dhA

rq ^ifFkd* fHk[kkjh ,slk cu] izHkq ls izHkq dks gh ek¡x ldsAA

d`ik dh efgek

d`ik izHkq dh gS vgSrqdh ns[k ysrs geA

blds fn[krs gh eqfä }kjk ns[k ysrs geAA

ns[kus okys gSa ge dkSu] ekSu gksus ijA

Lo:i fuR; fufoZdkj ns[k ysrs geAA

eu ds ekus gq, lq[k&nq%[k gSa lHkh cU/ku gSaA

eksg ds feVrs gh m)kj ns[k ysrs geAA

fdlh Hkh oLrq ls eerk rHkh feVrh gS tcA

viuk dqN Hkh ugha vf/kdkj ns[k ysrs geAA

izd`fr ds ikj izHkq dks rHkh le> ikrs tcA

viuk ekuk gqvk lalkj ns[k ysrs geAA

Kku dh n`f"V ls d.k&d.k esa vkSj {k.k&{k.k esaA

tM+ esa psru dk peRdkj ns[k ysrs geAA

^ifFkd* lUns'k gS foJke rHkh feyrk tcA

ije fiz;re dks eu ds ikj ns[k ysrs geAA

'kkfUr vkRek d: lkFk

lçân lo Hkrkuk KkRok ek 'kkfUr ePNfrA ¼xhrk 5@29½

यज्ञ तप के भोक्ता, सर्व भूतों के सुहृद मित्र, सब लोकों के महान ईश्वर को जानकर मनुष्य शांति प्राप्त करता है।

परमात्मा ही सर्वाश्रय परमतत्व है, उसका कोई रूप नहीं है। इसीलिए वह सर्वरूपमय हो सकता है, वही सर्वमय है और सब से भिन्न है।

परमात्मा को देखना चाहते हो तो सर्वत्र पवित्र आत्मा का अनुभव करो। समस्त नामरूपों का प्रकाशक नाम रूपातीत है। तुम्हारे लिए परमात्मा का आनन्द धाम तभी खुलेगा जब तुम किसी भी देहादिक वस्तु व्यक्ति के दास न रहकर स्वयं के स्वामी हो सकोगे। स्वयं के स्वामी होने के लिए श्वास प्रति श्वास के पीछे–आगे नित्य विद्यमान अखण्ड चेतन सत्ता को देखो, क्षण–क्षण के पीछे शाश्वत चिद्घन तत्व का अनुभव करो।

अनेकों नामरूपों के प्रकाशक एक परमात्मा आत्मा को देखने से और आत्मस्वरूप से सभी को अपना मानने से संग्रह की आसक्ति नहीं रहती, लोभ नहीं रहता, लोभ न रहने से भय नहीं रहता, राग–द्वेष समाप्त हो जाता है। आसक्ति, लोभ, राग, द्वेष के न रहने पराधीनता

नहीं रहती, तभी सेवा की पूर्णता, त्याग की पूर्णता, प्रेम की पूर्णता में आनन्दानुभव होता है। कामना के नाश से ही शांति मिल जाती है।

जिस प्रकार भौतिक विज्ञान के अपने निर्णय हैं, उसी प्रकार आधिदैविक और आध्यात्मिक विज्ञान के निर्णय हैं। यह शुद्ध अहंकार ज्ञान–विज्ञान से विमुख होकर मिथ्या अभिमानी बना रहता है।

यह अहंकार समझता है मैं चल रहा हूँ, सुन रहा हूँ, देख रहा हूँ, खा रहा हूँ, अमुक अमुक कार्य कर रहा हूँ परन्तु एक समय ऐसा आता है कि यह चल नहीं सकता, सुन नहीं सकता। अभी यह भोजन नहीं पचा सकता, धड़कन नाड़ी नहीं चला सकता।

भगवान का निर्णय है कि सारे कर्म प्रकृति के गुणों द्वारा होते हैं, परन्तु अहंकार विमूढ़ अपने को कर्त्ता मानता है।

समस्त विश्व में अहंकारी मनुष्य अशान्त है, पशु–पक्षी कोई अशान्त नहीं है।

अहंकार के कारण ही पराधीनता है। स्वाधीन स्वतन्त्र मनुष्य वही हो सकता है जो भीतर शक्ति नष्ट करने वाले पशु को स्ववश में कर लेता है, साथ ही राक्षस के दानव के अधिकार में नहीं रहता है जो देवताओं को सन्तुष्ट रखते हुए उनसे कुछ आशा नहीं रखता।

यह गुरु सम्मति है कि तुम जो हो, जैसे हो, वैसा जान लो, आत्मा में सन्तुष्ट तृप्त रहो तो अशान्ति मिट जायेगी। और अधिक कुछ पाने की तथा होने की तृष्णा अशांत बनाती है।

शान्ति में जो शुभ होता है अशांति में वही अशुभ हो जाता है। इन गुरु वाक्यों को पढ़ते हुए इस क्षण तुम अपनी ओर देखो? क्या तुम इन वाक्यों को अशांत होने पर स्मरण रख सकोगे? याद रहे कि अशांत होने पर, शान्ति कहीं बाहर जाने से नहीं मिलेगी, किसी के द्वारा नहीं मिलेगी, क्योंकि वह कहीं जाती नहीं है इसलिये आती भी नहीं है। शान्ति शाश्वत है नित्य रहती है। अशांति ही आती है और जाती है।

जब तुम किसी कामना तृष्णा पूर्ति के लिये आतुर होते हो अथवा जब तुम्हारे भीतर किसी से द्वेष होता है, किसी पर क्रोध होता है, कुछ पाने का या कुछ बचाने का लोभ प्रबल होता है तब तुम अशान्त हो जाते हो।

अशान्त होने पर यदि तुम कामना को, द्वेष को या तृष्णा को भय के मूल कारण लोभ को, ध्यान से शान्त होकर देख सको तब धीरे–धीरे अशान्ति घटने लगेगी।

तुम्हें निरन्तर शान्त रहना हो या जितनी देर शान्ति में रहना हो उतने समय तक इच्छा कामना को त्याग दो, ममतारहित हो जाओ,

ईश्वरीय प्रेम में आनन्दित रहो, ईश्वर सभी का सुहृद है, वैसे ही तुम भी सब के हितैषी सुहृद होकर बर्ताव करो, अहंकाररहित होकर श्रद्धापूर्वक ज्ञान से विनाशी में अविनाशी को देखो, समता में सजग रहो। फलाशा एवं राग, द्वेष का त्याग करो फिर शान्ति ही शान्ति रहेगी।

जिसे भी प्रीति सहित तुम अपना मानते रहोगे उसी में आसक्ति बनी रहेगी वह आसक्ति सत्संग से ही नष्ट होगी। अतः समस्त आसक्तियों के मिटाने के लिये सन्त संग करते रहो। सत् केवल आत्मा है, उसका संग ही सत्संग है।

सन्त संगति से दुःख देने वाले दोषों का ज्ञान होता है। जो असत् है, अनित्य है उसका विवेक होता है।

धन तथा सुखोपभोग के लिये मूर्ख और मूढ़ लोग भी गतिशील देखे जाते हैं। यशकीर्ति के लिये अनेकों विद्वान प्रगतिशील होते हैं लेकिन दोषों के नाश एवं सद्गुणों के विकास के द्वारा कोई विवेकी ही सद्गति प्राप्त करते हैं। परमात्मा की प्राप्ति ही जिनका एकमात्र लक्ष्य होता है, वही परम गति को प्राप्त देखे जाते हैं।

जो साधक जगत में धन, भोग, मान, नाम, पद, ऐश्वर्य कुछ भी नहीं चाहते उन्हीं को परम शान्ति सुलभ रहती है। तुम गति, प्रगति, दुर्गति, सद्गति, परमगति और परम शांति के भेद को जानकर अपना

अध्ययन करो और तदनुसार सम्यक् ज्ञान में कर्त्तापन का अभिमान छोड़कर दृष्टा होकर देखो।

सहस्रों साधक पूछते हैं कि शांति कैसे मिलेगी, लेकिन कर्म वहीं करते हैं जिससे अशांति बढ़ती है।

अनेकों साधक ऊपर से भक्ति की साधना करते हैं परन्तु भीतर से भोग प्राप्ति के अवसर पकड़ते रहते हैं, भोगी ही बने रहते हैं।

तुम अज्ञान में मिली हुई वस्तुओं को अपनी मानकर उन्हें भोगते आ रहे हो, अब ज्ञान में सजग रहकर कुछ भी अपना न मानो तब तुम्हें शांति के लिये वस्तुओं का त्याग नहीं करना होगा। जो लोग अपनी मान कर किसी वस्तु का त्याग करते हैं वे त्याग के अहंकारी बने ही रहते हैं। वास्तव में वस्तु का त्याग नहीं करना, ममता छोड़ना है। तुम ज्ञान में कुछ भी न रहने दो तभी मुक्ति मिल जायेगी। अपने लिए प्रभु से कुछ भी नहीं चाहने से पूजा में पूर्णता आ जायेगी।

सभी प्राणी प्रभु के ही हैं—ऐसा जानकर सभी की यथोचित सेवा ही प्रभु की पूजा हो जाती है।

इस प्रकार के भजन में अर्थात् सेवा—पूजा में हर्ष, शोक, राग, द्वेष, भय, क्रोध से अस्थिर बुद्धि, बाधक बनती है। सुख की आशा से ही राग, द्वेषादि वृत्तियाँ उत्पन्न होती हैं। प्राणायाम विधिवत करने से

भी शरीर के प्रति, सम्बधियों के प्रति तथा भोगों के प्रति राग नहीं रहता।

सुख का प्रलोभन रहे और दुःख का भय नहीं रहे तब भी राग द्वेष नहीं रहता।

शान्ति के लिए संसार नहीं छोड़ना है, अज्ञान छोड़ना है। अज्ञान में ही आसक्ति है, आसक्ति में अशांति है।

यह भी गुरु निर्णय है कि एक ओर तुम पशु–वृत्तियों से घिरे हो और दूसरे सिरे में अभी तुम परमपावन प्रभु से मिले हो। अज्ञान में जो तुम नहीं और जो तुम्हारा नहीं है उसे ही 'मैं' और 'मेरा' मानकर अटके हुए हो।

अब तुम अज्ञान की, अशुभ की, अनीति की, पाप की चिन्ता न करके ज्ञान को, शुभ की नीति को पुण्य को ही देखो, इन्हीं की चिन्ता करो। जिसका बार–बार चिन्तन करोगे चित्त उसी मय हो जायेगा। जिसे स्वीकार करोगे उसी में सम्बन्ध हो जायेगा।

जो प्रकाश को पा लेता है अथवा प्रकाश में दृष्टि खोल लेता है उसे अन्धकार मिटाना नहीं पड़ता। तुम ज्ञानरूपी प्रकाश में निरन्तर देखने के लिए सावधान रहो।

जो परमात्मा सर्वत्र, सर्वदा है, अव्यक्त अचिन्त्य है, सब में व्यापक अचल है, अविनाशी है उसकी उपासना के लिए तुम्हें स्थिर शांत, मौन, सचेतन, सजग रहना ही पर्याप्त होगा। स्थिर शांत रहने के लिए इन्द्रियों को संयम में रखना ही होगां विषमता मिटाने के लिए समता में दृढ़ता के लिए प्राप्त शक्ति, सम्पत्ति, योग्यता के द्वारा स्वयं भोगी न बनकर सबके हित में तत्पर रहना होगा।

जिस प्रकार आकाश सब में व्याप्त है, उसी प्रकार आत्मा को सब में व्याप्त अनुभव करो।

जब तक सब में एक आत्मा का अनुभव नहीं होता तब तक ईर्ष्या, द्वेष, कलह, क्रोध, निन्दा, घृणा, हिंसा से मन दूषित ही रहता है।

जहाँ नाम रूप है वहीं सर्व प्रकाशक सत्य है। जहाँ सत्य आत्मा नहीं वहाँ नाम रूप नहीं हो सकते। नाम रूप के बिना सत्य आत्मा रह सकता है। जिसकी उत्पत्ति नहीं, विनाश नहीं, वहीं नित्य सत्य है। अस्तित्व का अनुभव ही प्रतिष्ठित सत्य की साधना का आरम्भ और अन्त है।

दृश्य से दृष्टि हटाकर दृष्टा में स्थिर होने से आनन्द खुलता है, मन निरुद्ध होता है।

संसार से अथवा भगवान से जितना माँगना, लेना छोड़ोगे उतनी ही मुक्ति मिलती जायेगी और जितना लोगे उतना ही बन्धन बढ़ता जायेगा।

असंगता ही ब्रह्म और आत्मा के अभिन्न ज्ञान का साधन है। अहं भाव ममता, कामना के त्याग से तत्काल ही शांति का अनुभव कर सकते हो। जब तक त्याग तभी तक शांत, त्याग करना भूल गए वहीं अशांत हो जाओगे।

जिस समय किसी की याद नहीं आती अथवा कोई संकल्प नहीं उठता, कोई वेदना नहीं होती उस समय जो है वह बोधस्वरूप, ज्ञानस्वरूप आत्मा ही है, वहीं से प्रकृति का आरम्भ होता है।

प्रकृति के प्रवाह में बहते हुए उसका अनुभव करो जो प्रवाह में भी स्थिर शान्त है, सर्वाश्रय है।

प्रवाह में तैरने के लिए श्रम करना पड़ता है लेकिन बहने के लिए श्रम न करके ढीला छोड़ देना होता है ढीला छोड़ देना ही समर्पण है। तुम किसी रथ में यात्रा करते समय सारा बोझ अपने सर पर रख कर यात्रा करो तो मूर्खता ही मानी जायेगी और उसी रथ में बोझा रख कर उसके ऊपर बैठकर यात्रा को देखो तो निरन्तर विश्राम से सधी शान्ति रहेगी।

विनाशी देहादिक वस्तुओं को तुम सदा रखना चाहोगे, अपनी इच्छानुसार रखना चाहोगे तभी भय चिन्ता में पड़ोगे। जो ध्यान से ज्ञान में जागता है वह चाह का त्याग करता है।

तुम मिली हुई देहादिक वस्तुओं को अपनी न मानो सब परमात्मा की जानकर सेवा में उपयोग करो और परमात्मा को ही अपना सर्वस्व मानकर परमात्मा से कुछ भी न चाहो क्योंकि अपना प्रभु इतना समर्थ है कि बिना माँगे ही इतना अधिक दिया है कि उसे पूर्णतया देख नहीं पाते। उसका ऐसा विधान है कि जो मिलना चाहिए वह बिना माँगे ही मिलता जायेगा।

तुम परमात्मा को परमात्मा में रहते हुए भी इसीलिए नहीं जान पाते कि राग, द्वेष, लोभ, मोह, क्रोधादि विकारों के कारण प्रायः अशान्त रहते हो। परमात्मा तो नित्य उपस्थित है लेकिन अशांति के कारण तुम परमात्मा के प्रति उपस्थित नहीं हो।

यह भी गुरु निर्णय है कि तुम किसी के समान होने की कामनावश किसी की नकल न करो, किसी से अपनी तुलना न करो। तुम जो हो सो जानो, तुम कोई और नहीं हो लेकिन दूसरों से तुलना करने पर अशांत होते रहते हो।

कुछ पाने की, किसी के समान होने की दौड़ में ही अशांति है, प्रतिस्पर्धा है, संघर्ष है और दुःख है। आरम्भ में थोड़ी–थोड़ी देर स्वस्थ

रहने के लिए आत्मस्थ होने के लिये किसी भी अवस्था, परिस्थिति, वस्तु, व्यक्ति का चिन्तन न करो। यदि ध्यान में केवल 'हूँ का बोध रहे, 'मैं' न रह जाये तब ब्रह्म का अनुभव होता है।

यह भी गुरु निर्णय है कि जब तक तुम अपने अज्ञान को नहीं जानते तब ज्ञान को भी नहीं जान सकते, तब तक यह अहंकार, ज्ञानाभिमानी बना रहेगा। शास्त्रों के ज्ञान को अपना ज्ञान मानने के भ्रम में न रहो।

तुम सावधान रहकर देखते रहो कि जो कुछ आता है उसी का दाता प्रभु है और जो जाता है वह भी प्रभु का ही है, अपनी गाँठ का कुछ भी नहीं है क्योंकि जो कुछ तुम्हें मिला है वह तुम्हारा बनाया हुआ नहीं है। तुम उसे सदा नहीं रख सकते। मोहवश जिसे तुम अपना मान लेते हो उसी से सम्बन्ध हो जाता है। जिस वस्तु का या व्यक्ति को अपनी नहीं मानते उससे ममता आसक्ति नहीं होती, उसकी हानि से, उसके वियोग से तुम्हें दुःख भी नहीं होता। देहादिक वस्तुओं के साथ तुम अपने को जानो। मानने में ही बन्धन है।

यदि तुम्हारे साथ उदारता, दया, नम्रता, सरलता, निष्कामता आदि दैवी सम्पदा है तब तुम्हें बाहरी सम्पत्ति धन को बाँट कर गरीब बन जाने में सौभाग्य दीखेगा।

यदि तुम्हारे साथ दैवी सम्पदा नहीं है तब धन सम्पत्ति को जोड़ते रहकर कठोर हिंसक चोर बनकर, अमीर कहलाने की दरिद्रता की ही वृद्धि हो सकती है।

जितनी अधिक देह से तथा सम्बन्धियों से अथवा संग्रहित वस्तुओं से तन्मयता ममता होगी उतनी अधिक आत्मा की विस्मृति बनी रहेगी, आत्म स्थिति नहीं होगी।

आत्मा परमात्मा का कभी कहीं अभाव नहीं है, आनन्द एवं शान्ति निरन्तर है, केवल उसकी विस्मृति चल रही है। निष्काम होकर प्रभु स्मरण करते हुए चाहे जहाँ शांति का अनुभव कर सकते हो।

यह गुरु निर्णय है कि सन्त संग में प्रभु चर्चा अथवा सत्–चर्चा सुनकर विनाशी देहादिक वस्तुओं को अपनी मान कर ममता न करनी चाहिये।

कर्त्तव्य का पालन करते हुए अनुकूल फल की अथवा हानि की चिन्ता नहीं करनी चाहिये।

तुम्हें जो शक्ति, सम्पत्ति तथा समय सुलभ है उसका दुरुपयोग नहीं करना चाहिये।

तन से, मन से, वाणी से, कर्म से हिंसा नहीं करनी चाहिए। किसी को बुरा मानकर उसकी ओर देखते हुए, मुस्कराते हुए, उसके

प्रति घृणा प्रदर्शित नहीं करना चाहिएं अपने दुःख से किसी दूसरे को दुःखी नहीं करना चाहिये, क्योंकि इन पापों से दुर्गति होती है।

यदि संयम का बल हो तो अपनी संगति से किसी के मन में द्वेष, क्रोध, लोभ कामनाओं को जाग्रत नहीं करना चाहिये।

अपनी इच्छा पूर्ति के लिये किसी को कष्ट दुःख नहीं देना चाहिये।

किसी का अपमान नहीं करना चाहिये। तुम नहीं करने योग्य कर्म के त्याग से शान्त रहोगे।

यह भी गुरु सन्देश है कि कोई सिंह यदि बाल्यकाल से भेड़ों के बीच में आ जाए तब तो यह भेड़–सा ही बन जायेगा, अपने स्वभाव को भूल जायेगा, अपने आपको जानते ही उसे स्वरूप की स्मृति लौटेगी। इसी प्रकार तुम्हारा संग सम्बन्ध अनेकों नाम रूपों से जुड़ गया है, किसी वस्तु के साथ मिल कर 'मैं' कह रहे हो, किसी को अपना मानकर 'मेरी' कह रहे हो, इस 'मैं' को देह से हटा कर और किसी भी वस्तु व्यक्ति को अपनी न मानकर अपने स्वरूप को जान लो।

जिस प्रकार तुम किसी न किसी वस्तु व्यक्ति के संयोग के इच्छित भोग का सुख चाहते हो और अनेकों सुखद पदार्थ चाहते हो,

उसी प्रकार अब किसी से कुछ न चाहते हुए केवल आनन्द को चाहो, शांति को चाहो।

यह भी स्मरण रखना कि आनन्द एवं शांति पाने के लिए तुम्हें कहीं जाना नहीं है क्योंकि वह दूर कहीं नहीं है, उसे कहीं से आना नहीं है, वह तो नित्य निरन्तर है। इस आनन्द को अथवा नित्य प्राप्त सत्य को देखने की दृष्टि खोलना है।

आनन्द की प्राप्ति का, प्रभु की प्राप्ति का कोई साधन नहीं है, वह किसी के द्वारा नहीं मिलता, बल्कि जब सब साधन छुट जाते हैं, जब सभी से निराशा हो जाती है, तब वही, परमात्मा ही शेष रह जाता है। अकेले रह जाने पर वही मिला हुआ दीखता है। इस प्रकार के वाक्यों को कहते रहना, सुनते रहना सभी के लिए सरल है परन्तु अकेले होकर देखना सरल नहीं लगता है।

feVk ns viuh gLrh dk] vxj rw erlck pkgsA
fd nkuk [kkd esa feydj xqys xqytkj gksrk gSAA

कोई भी बीज स्वयं की क्षुद्रता को तोड़कर विशाल रूप को पा लेता है, उसी भाँति तुम स्वयं की क्षुद्र सीमा को तोड़कर स्वयं में ही महान का दर्शन कर सकते हो।

यदि तुम क्षुद्र में अटक जाओगे तो मूढ़ता के कारण जो सत्य है, महत्वपूर्ण है उससे वंचित ही रहोगे।

अभी देखो! प्रायः प्रत्येक व्यक्ति जिस किसी वस्तु में या व्यक्ति में प्रीति फँसा देता है उसी में अटक जाता है। प्रीति के द्वारा कहीं तन में अटक गया है, कोई धन में या पदाधिकार में तथा कहीं घर में, परिवार में, आश्रम में, व्यापार में, अटका हुआ है, कहीं मधुर शब्द में, रूप में, स्वाद में, व्यसन में, भूषण वसन में, अटका है। प्रीतिपूर्वक अटकने में सुख मानते हुए भटक रहा है, परन्तु विश्राम चाहते हुए नहीं पा रहा है। तुम स्वयं अपने को देखो। जो कुछ पा चुके हो, जो सुख भोग चुके हो, जो कुछ जहाँ तक देख चुके हो, यदि अभी तक तृप्ति, सन्तुष्टि, शान्ति नहीं मिल सकी, तब आगे मिलने की आशा व्यर्थ ही है। इच्छाओं का अन्त नहीं दीखता, माँगना समाप्त नहीं होता, भोगने की शक्ति घटती जाती है लेकिन इच्छा पूर्ति की दरिद्रता समाप्त नहीं होती। इच्छाओं के त्याग से ही शान्ति सुलभ हो सकती है।

dke Øks/k dh vfXu esa] ngr ldy lalkjA
fojys cprs lk/kq tu] ikdj lR;k/kkjAA

सन्त का निर्णय है कि सारा संसार कामना की पूर्ति में सुख मानते हुए दुःख से घिरा हुआ है।

सभी के भीतर काम, क्रोध, ईर्ष्या, द्वेषादि की आग लगी हुई है। लाखों लोग मोह निद्रा में सोये हुए हैं, उन्हें भीतर की आग का अभी पता ही नहीं है।

Hkxoku dk fu.k; g%&

^^;k fu'kk lo Hkrkuk rL;k tkxfr l;ekA
;L;k tkxfr Hkrkfu lk fu'kk i';rk equ%AA**

सभी भूत प्राणी के लिए जहाँ अन्धकार है, रात्रि है, संयमी वहाँ ज्ञान प्रकाश में देखता है अर्थात् जागता है और सर्व भूत प्राणी (काम, क्रोधादि में) जहाँ जागते हैं वहाँ संयमी घोर अन्धकार देखता है।

¼xhrk½

अज्ञानरूपी अन्धकार में मनुष्य सुखी रहने के लिए प्रयत्न करता है, परन्तु अन्त में दुःख ही भोगता है। शांति के लिये प्रयत्न करना है, परन्तु अशान्ति में ही गिरता है। न चाहते हुये वियोग आ ही जाता है, हानि आ जाती है, बुढ़ापा आ ही जाता है, मृत्यु आ ही जाती है। क्या तुम यह सब कुछ नहीं देख रहे हो? देखते हुए असावधान न रहो।

जिस प्रकार कोई मनुष्य घर में लगी आग को जाग कर देख ले तब वह आग उसे नहीं जला पाती, उसी प्रकार ज्ञान में जो जाग जाते हैं उन्हें वह काम, क्रोध, ईर्ष्या, द्वेषादि रूपी आग नहीं जला पाती

लेकिन जो मोह नींद में सोये हैं वे इस आग को नहीं देख पा रहे हैं। उनका न देख पाना ही आग का प्रज्वलित होते जाना है।

संसार में जितने शोक विलाप–चीत्कार क्रन्दन सुनाई दे रहे हैं जितने लोग घोर अशांति से हाय, हाय कर रहे हैं ये वही लोग हैं जो भीतर की लगी आग को पहले से देख नहीं पाये थे, अब उसी ताप से जल रहे हैं। तुम उस आग को देखो और बच जाओ।

सन्त निर्णय को जागकर सुनने वालों! तुम भी अपने घर के भीतर, ध्यान से, ज्ञान–चक्षु खोल कर देख लो, वही आग तुम्हारे घर में लगी है या नहीं।

यह गुरु निर्णय है कि तुम कई प्रकार की तृष्णारूपी आग से तपते हुए अहंकार को धन द्वारा, पदाधिकार द्वारा, प्रिय संयोग के भोग द्वारा शीतल करने का प्रयत्न न करो क्योंकि आज तक कोई शीतल न हो सका है, न हो सकेगा।

सहस्त्रों लोग दूसरों को देख–देख कर भीतर की आग बुझाने के लिये नई–नई आग प्रगट कर रहे हैं। समाज में अनेकों प्रकार के व्यसन, मनोरंजन के साधन, नये–नये फैशन, यह सब सन्तापित अहंकार को सन्तृप्त बनाने के लिये ही बढ़ रहे हैं, परन्तु अहंकार की अतृप्ति बढ़ती ही जाती है।

एक बहुत सभ्य जागा हुआ साधकों का समाज है जो भीतर की आग को अर्थात अशांति को दुःख सन्ताप को पूजा–पाठ, जप, यज्ञ, तप के द्वारा बुझाने मिटाने का प्रयत्न कर रहा है। वह किसी सिरे में एक कामना की आग को शांत कर पाता है तो दूसरे कोने में अभिमान की आग धधकने लगती है। कभी क्रोध की आग बुझाता है तो पीछे से यश, कीर्ति की लपटें उठने लगती हैं। कभी लोभ शांत होता है तो मोह प्रबल हो जाता है। जलते हुए घर को छोड़ता है तो जंगल में आश्रम के निर्माण में तपने लगता है, परिवार के सन्ताप से बचता है तो शिष्य सेवकों के संघर्ष की अग्नि तपाने लगती है।

किसी भी प्रकार की अग्नि बुझाने को जहाँ तक वस्तु के संयोग का सहारा लिया जाता है वहाँ तक अग्नि बुझने की अपेक्षा और बढ़ती है। इसीलिये कहा हैः–

^^c> u dke vfxu ry lh ftfe fo"k; Hkkx cg ?kh rA**

किसी भी कामना की पूर्ति, कामना वृद्धि का साधन बन जाती है, इसीलिए जिसे बुझाना, मिटाना चाहते हो उसे केवल देखते रहो, उसके उद्गम की ओर देखते रहो, बस देखते भर रहो, पूर्ति का प्रयत्न न करो। अशांत होकर शांति प्राप्ति के लिये कहीं न भागो, उलटे अशांति को ही देखो कि क्यों हो रही है। दुःखी होकर देखो कि किस दोष से दुःख हो रहा है।

Hkxoku dk fu.kZ; gS&

सब प्रकार से सर्वभाव से उस परमात्मा की शरण स्वीकार करो।

^rRiz lknkRijka 'kkfUr LFkkua iklI;fl 'kk'ore~AA*

उसकी कृपा से ही परम शांति, शाश्वत धाम की प्राप्ति होगी।

¼xhrk 18@62½

सभी कामनाओं को छोड़ देने पर, ममता एवं अहंकाररहित विस्पृह होकर जो विचरता है, वर्तता है, वही शांति को प्राप्त हो जाता है। ¼xhrk 2@31½

भोगों का त्यागी ही शांति प्राप्त करता है, कामी नहीं। परमात्मा से युक्त शांति में होता है, अयुक्त नहीं होता।

यह गुरु निर्णय है कि शांति शाश्वत है। वह कहीं से आती नहीं।

तुम जितनी देर कुछ नहीं चाहते उतने समय तक शांत ही हो, शांति की खोज न करो। निरीक्षण करो कि अशांत क्यों हो? अशांति होती है किसी न किसी कामना की पूर्ति न होने से, अशांति रहती है तृष्णा अथवा लोभ या किसी से द्वेष के कारण। ममता मोहवश सम्बन्ध विच्छेद के भय से भी अशांति होती है।

यदि तुम प्राप्त वस्तुओं से सन्तुष्ट हो अप्राप्त की कामना नहीं है, किसी से द्वेष न होकर सभी से प्रीति है तब तुम शांति में ही हो।

जितनी देर कोई संकल्प नहीं उठता अथवा बीती हुई सुखद दुःखद घटनायें याद नहीं आतीं, उतनी देर तुम शांति में हो। जितनी देर भविष्य की चिन्ता नहीं रहती, उतने समय तक शान्ति में ही हो।

किसी स्थान में, किसी मन्दिर में, गुरुद्वारे में, चर्च में, मस्जिद में अथवा किसी सन्त महात्मा के पास श्रद्धेय गुरु के निकट बैठने में, अथवा जितनी देर पूजा, पाठ, जप आदि में रहते हो। उतने ही समय तक शांति मिलती दीखती है, उतने समय तक इच्छा, द्वेष, लोभ, क्रोधादि विकारों से दूर रहते हो।

तुम अपने अहंकार की सीमा में सुखासक्ति, ममता, कामना, तृष्णा और द्वेषादि विकारों के कारण ही अशांत रहते हो।

तुम ध्यान से, ज्ञान से, अहंकार को जब जान लोगे तभी अपने से सभी को भिन्न पाकर सबसे असंग होकर स्वतन्त्र रूप से शान्ति का अनुभव करोगे।

———————

v'kkfr ls cpks

1– जब तक तुम लोभवश धन के संग्रह में सन्तुष्ट होते रहोगे तब तक भय से, दुःख से नहीं बचोगे और आत्म–ज्ञान से विमुख रहोगे।

2– जब तक तुम साधारण छोटी से छोटी सुई जैसी वस्तु को अपनी मानकर ममता रक्खोगे तब तक उसकी हानि से दुःखी होते रहोगे।

3– तुम प्रत्येक वस्तु, व्यक्ति के सम्बन्ध विच्छेद को निश्चित समझकर संयोग में ही अकस्मात् होने वाले वियोग के लिए तथा किसी समय होने वाली हानि के लिए सावधान रहो।

4– जब सम्बन्धित वस्तु छिन जाये या छूट जाये अथवा किसी प्रिय लगने वाले सम्बन्धी का वियोग हो जाये, मृत्यु हो जाये, तब तुम्हारे साथ जो वस्तु जो सम्पत्ति अथवा जो सम्बन्धित व्यक्ति दीख रहे हों उनसे भी किसी दिन सम्बन्ध टूट जायेगा–यह स्मरण करते हुए जिससे कभी सम्बन्ध टूटता ही नहीं, जो तुम्हें कभी छोड़ता ही नहीं, उस निरन्तर रहने वाले चेतनस्वरूप आत्मा की स्मृति में शांत होते रहो।

5– अनेकों मोही सुखासक्त व्यक्ति अपने प्रिय सम्बन्धी के शरीर छुट जाने की बात भी सुनना पसन्द नहीं करते, लेकिन तुम्हारी बुद्धि में

यदि कुछ विचार की शक्ति है तो जो सबसे अधिक प्रिय हो, चाहे श्रद्धास्पद गुरु हो उसके विनाशी देह के न रहने को नित्य स्मरण करते हुए अविनाशी आत्मा को ही सत्य मानकर निर्भय निश्चिन्त रहो।

6– प्रायः जब तुम्हारी घड़ी, छड़ी, चप्पल, पेन, रूमाल, तौलिया, धोती, कापी, पुस्तक, अटैची, मनीबैग आदि कोई वस्तु खो जाती है तब चाहे जितनी स्मृतियों शक्ति, सम्पत्ति, योग्यता, विद्वता हो अथवा कितना ही गीता, रामायण, श्रुति स्मृतियों का अध्ययन हो उस हानि की वेदना से बचने में कुछ देर कोई सहायक नहीं होता, लेकिन कुछ समय पश्चात् यदि तुमको पता लग जाये कि खोई हुई वस्तु अपने ही परिवार के सम्बन्धी के पास है, तब अशांति समाप्त हो जाती है क्योंकि वस्तु की अपेक्षा सम्बन्धी अधिक प्रिय है। मोह लोभ को दबा देता है।

7– जब तुम्हारी कोई वस्तु खो जाये, तब सोच लो कि एक दिन यह शरीर भी छुट जायेगा, एक–एक करके प्रिय सम्बन्धी भी छुटते जायेंगे, जो कुछ भी साथ है वह किसी दिन निश्चित ही छुटेगा।

8– यह भी विचार करो कि इतने दिन जिस वस्तु के संयोग से हमें सुख मिलता रहा उसी प्रकार कुछ दिन दूसरे को भी सुख मिल जायेगा, अन्त में कोई भी वस्तु किसी के साथ सदा नहीं रहेगी।

9– एक राजा आत्मज्ञान में तृप्त था। उसकी प्रीति तनमय, मनमय, पदमय न रह कर आत्मामय हो रही थी। उसके ऊपर दूसरे राजा ने राज्य के लोभवश चढ़ाई कर दी। आत्म–ज्ञानी राजा ने सन्देश भेजा कि आप युद्ध न करके इस राज सिंहासन को स्वीकार कर लें! इतने दिन मैंने राज्य का सुख भोगा है, कुछ दिन आप भी भोग लें, मुझे इस सिंहासन को कभी छोड़ना ही है तो अभी से ही राज्य मुकुट के भार से मुक्ति का आनन्द देखूँगा। ममता में ही महान दुःख है, त्याग में ही शांति है।

10– यह भी गुरु निर्णय है कि जब तक कोई भी वस्तु अथवा व्यक्ति प्रिय लगती है तब तक कलह, क्रोध, विवाद, शोक, रुदन, मत्सर, निन्दा, घृणा कलंक से मुक्ति नहीं मिलती है। इसीलिए इन दोषों के पीछे मन में रहने वाली रागासक्ति का निरीक्षण करने में आलसी प्रमादी न बने रहो।

11– प्रतिकूलता में सन्तोष को धारण करो। चाहों के रहते सन्तोष नहीं हो पाता। चाह के त्याग में ही शांति मिलती है।

12– जितना कुछ मिला है उसी में प्रसन्न रह सकोगे तब सन्तोष सध जायेगा।

13– जो दूसरों के पास है उसे देखकर तुम्हें पाने का लालच न हो, किसी सुखी को देखकर उसकी सुन्दर वस्तुओं को देखकर तुम पर प्रभाव न पड़े तब सन्तोष की दृढ़ता समझी जायेगी।

14– प्रायः लाखों मनुष्य धन के पीछे अत्यधिक असन्तुष्ट है। यद्यपि धन के उपार्जन में दुःख है, उसकी रक्षा में दुःख है, धन के व्यय में भी दुःख होता है, धन के छिन जाने में तो दुःख होता ही है तब भी मूढ़तावश धन ही चाहते हैं।

15– राजा की, चोर की, उत्तराधिकारी की, भाई–बन्धु की दृष्टि धन पर रहती ही है। ये सब धन के पीछे ही धनी के शत्रु बन जाते हैं।

16– अधिक सम्पत्ति जोड़ने वाले और सम्पत्ति चुराने वाले या छीनने वाले, छापा मारने वाले–दोनों के आगे और पीछे पुलिस रहा करती है। स्वतन्त्र कोई भी नहीं है।

17– जितने अधिक संग्रही, धनी होते हैं उतने अधिक गरीब देखे जाते हैं। जितने अधिक लाभ से सुखी होते हैं उतने ही अधिक सम्पत्ति के छिनने, छूटने पर दुःखी देखे जाते हैं।

18– परिग्रही, संग्रही, सम्पत्ति का दास होता है। जो साधक भीतर त्याग की शांति का अनुभव करता है वही संग्रह का, दानी अथवा परिग्रह का त्यागी हो पाता है। भीतर आनन्द की पूर्णता पा जाने पर

अपरिग्रह पूर्ण होता है। भीतर की पूर्णता अथवा स्वयं में आनन्द में ही उपवास पूर्ण होता है।

अनशन कहते हैं भूखे रहने को और उपवास कहते हैं सत् में आनन्द में रहने को। आनन्दित रहने पर भूख का पता ही नहीं रहता।

19– जिस हृदय में आनन्द घुल जाता है उसके द्वारा सर्वत्र प्रेम की ही सुगन्ध प्रसारित होती रहती है।

20– जब तक विषय सुखों में आसक्ति रहती है तब तक सारी शक्ति विषय वृत्ति के रूप में प्रवाहित रहती है। वृत्ति के संयम से ज्ञान दृष्टि खुलती है।

21– तुम रेल में यात्रा करते हो भीड़ के साथ परस्पर सट कर बैठते हो और जहाँ तक मौन रहते हो, किसी से कुछ नहीं चाहते हो, किसी को अपना नहीं मानते हो, वहाँ तक तुम सबसे असंग रहने़ के कारण आसक्ति, ममता, कामना से मुक्त हो। इसी भाँति जीवन–यात्रा में देह से सम्बन्धित वस्तुओं व्यक्तियों के साथ रहते हुए भीतर से कुछ भी अपना न मानो, किसी से आनन्द पाने की मुक्ति स्वतन्त्रता स्वाधीनता पाने की कल्पना न करो और परस्पर प्रत्येक व्यवहार को होते हुए देखो, कर्त्ता न बनो, तभी तुम सबके साथ रहते हुए भी भीतर से असंग रहने के कारण बन्धन से मुक्त हो सकते हो।

22– तुम्हारे वस्त्रों में, घर के बरतनों में, कुर्सी–मेज में बिना तुम्हारे कुछ किये ही अपने आप ही धूल जमती रहती है। इसी प्रकार संगति के प्रभाव से तुम्हारे अन्तर मन में चित्त में, बुद्धि में, भी विकाररूपी धूल पड़ती रहती है। इसीलिए विद्वान के लिए सन्ध्योपासना का नियम बनाया गया है। सन्ध्योपासना का अभिप्राय यही है कि जो संयोग–वियोग से रहित, निरन्तर एक रस सनातन सत्य है उसके निकटस्थ होना है–यही संध्योपासना अन्तःकरण में संग के प्रभाव से आए हुए मैल को दूर करने का एक अद्भुत उपाय है।

yx jgh fd'rh fdukjs] Fkke yks fQj cg u tk,A
vkjtw ;g gS ^ifFkd* dh vkjtw dqN jg u tk,A

तुम्हीं में यह जीवन जिये जा रहा हूँ।
जो कुछ दे रहे हो, लिए जा रहा हूँ।।

तुम्हीं से चला करती, प्राणों की धड़कन।
तुम्हीं से सचेतन, अहंकार तन–मन।
तुम्हीं में यह दर्शन, किये जा रहा हूँ।। जो कुछ....

असत् के सदा, आश्रय हो तुम्हीं सत्।
तुम्हीं में विषय विष, तुम्हीं में ही अमृत।
पिलाते हो जो कुछ, पिये जा रहा हूँ।। जो कुछ....

जहाँ भी रहूँ, ध्यान में तुमको देखूँ।
तुम्हीं में हूँ मैं, ज्ञान में तुमको देखूँ।
'पथिक मैं यह अरजी, दिए जा रहा हूँ।। जो कुछ....

l dy Hkqou d xku rqEgh gkA
lok/kkj egku rqEgh gkAA

तुम नास्तिक की प्रकृति शक्ति में, आस्तिक की श्रद्धेय अस्ति में।
ज्ञानी की तत्वानुरक्ति में, आदि मध्य अवसान तुम्हीं हो।।

सर्व रूप में सर्व नाम में, सर्व काल में सर्व धाम में।
तुम ही गति में तुम विराम में, शक्तिमान भगवान तुम्हीं हो।।

तुम में दनुज देवगण तुम में, तुम में पर्वत है तृण तुम में।
तुम में कल्प और क्षण तुम में, सबके परम स्थान तुम्हीं हो।।

मानव में सत्धर्म तुम्हीं से, कर्म विकर्म अकर्म तुम्हीं से।
फले गुह्यतम मर्म तुम्हीं से, सर्व प्रकाशक ज्ञान तुम्हीं हो।।

तुम अमान के मानी के भी, ज्ञानी के अज्ञानी के भी।
तुम दरिद्र के दानी के भी, आश्रय एक समान तुम्हीं हो।।

तुम में जीवन मरण तुम्हीं में, सबका है निस्तारण तुम्हीं में।
'पथिक' पा रहा शरण तुम्हीं में, करते शान्ति प्रदान तुम्हीं हो।।

निर्णय

सोचो जिससे सब कुछ मिलता, भगवान उसे ही कहते हैं।
जिसमें सब, जो सब में परिपूर्ण, महान उसे ही कहते हैं।।

दोष जिसे दीखते न हों, वह पशुवत मानव आकृति में।
जो मन में दोष न रहने दें, विद्वान उसे ही कहते हैं।।

निर्बलों के काम आ सके जो, जग में सच्चे बलवान वही है।
जब धन की चाह न रह जाये, धनवान उसे ही कहते हैं।।

कहते हैं वीर धीर उसको, मन इन्द्रिय जिसके वश में हो।
जिसका सुन्दर पवित्र जीवन, श्रीमान् उसे ही कहते हैं।।

वह भाग्यवान है, जो दुःखियों को, यथाशक्ति सुख देता है।
दे करके ले न कभी कुछ, दयानिधान उसे ही कहते हैं।।

कामनापूर्ति का जो भी प्राणी, कामी क्रोधी बन जाता है।
निष्काम बना दे जो कि, प्रेममय ध्यान उसे ही कहते हैं।।

जिससे कि जान ले अपने को, इस जग को, जगदीश्वर को भी।
जब 'पथिक' मुक्त हो सके, ज्ञान–विज्ञान उसे ही कहते हैं।।

किरन की तरह लूटो, तिमिर से नफरत न करो।
नदी की तरह बहो, तट से मुहब्बत न करो।।

उठो पर्वत से, मगर बादलों जैसे बरसो।
फूल से खिलो झरो, कोई वसीयत न करो।।

ije iHkq dh fi;

परम प्रभु की प्रिय शाश्वत आत्माओं,
तुम्हें देख कुछ गीत गाने की मन में।
जो कुछ भी अभी तक समझा है मैंने,
वही सब तुम्हें भी सुनाने की मन में।।
परम तत्वदर्शी जगत को ही प्रभुमय,
प्रभु को जगतमय सतत देखते हैं।
इसी भाव से सर्व रूपों में अपने,
सर्वस्व प्रभु को ही पाने की मन में।।
मुझे देखकर कोई धोखा न खाना,
नहीं दे सकूँगा मैं वरदान कोई।
कदाचित्, तुम्हें जो भी कुछ मिल चुका है,
वह छिन जायेगा ये बताने की मन में।।
तुम्हारा वही है जो तुमसे न छूटे,
कभी भी, कहीं भी जो तुमको न छोड़े।
उसे खोजना मत पहिचान लेना,
न रखना कहीं अपने जाने की मन में।।
बहुत सुन चुके हो हमारे भी सुन लो,
कभी आयेगा जो अभी उसको देखो।
जो कुछ मुझ पथिक को दिखाया गया है,
वही सब तुम्हें भी दिखाने की मन में।।

साधु वेष में पथिक का संक्षिप्त परिचय

आपके शरीर का जन्म कान्यकुब्ज ब्राह्मण कुल में सम्वत 1935 में हुआ था। आपके पिता जिला फतेपुर ग्राम–बकेवर के रहने वाले थे। कालान्तर में वह जाकर ग्राम–साढ़ जिला कानपुर में रहने लगे। आपकी बाल्यावस्था ननिहाल में व्यतीत हुई। वहीं पर कुछ शिक्षा प्राप्त की। आपको बचपन से देवी–देवताओं पर पूर्णतः विश्वास था। आपके माता–पिता का स्वर्गवास हो जाने पर आप ग्राम के बाहर भूँधरा खोदकर तप करने लगे। इस अवस्था में भी अनेक लोग आपके दर्शन करने आया करते थे।

बाल्याकाल से ही किसी से उपदेश सुने बिना भगवान के नाम जप स्मरण में विश्वास था। आरम्भ से ही एक परमहंस अवधूत सन्त में श्रद्धा हो गयी जो नग्न ही घूमते थे। कोई वस्त्र न रखते थे। स्नान के पश्चात खाक लगा के जल सुखाते थे। उसे विभूति कहते थे।

गुरु महाराज ने आपका नाम ''पलकनिधि'' रखा था। वैसे आस–पास के गाँव के लोग आपको ''ब्रह्मचारी'' कहा करते थे। सीतापुर में आपने बहुत समय तक तप किया। नदी किनारे पर्ण कुटी बनाकर आपने तप किया। उस समय आप टाट का ही अचला, लंगोटी, बिछाने ओढ़ने के लिये भी आप टाट का ही प्रयोग करते थे। चना, गेहूँ को फुलाकर खाते थे।

पूर्व जन्मों के संस्कारों से प्रेरित होकर सब कुछ छोड़कर साधु वेश में विचरण करते हुए अनेकों कविताएं लिखीं। एकान्त सेवी होने के कारण पद्य के साथ–साथ गद्य लिखना आरम्भ हुआ। लगभग पैंसठ पुस्तकें छपी। मान प्रतिष्ठा पूजा भेंट से सदा विरक्त रहकर विचरण करते हुए आध्यात्मिक

विचारों का समाजव्यापी प्रचार बढ़ता गया, विचारों की प्रधानता से विचारक समुदाय की वृद्धि होती गयी। 'साधु वेष में एक पथिक' नाम से कल्याण में लेख छपते रहे। आपने अठसराय में नागा निरंकारी विद्यालय बनवाया और जिला कानपुर ग्राम–साढ़ में भी आपने विद्यालय बनवाया है।

ज्येष्ठ–शुक्ल पंचमी तदनुसार 10 जून 1997 को परमार्थ आश्रम हरिद्वार में आपका शरीर पूर्ण हुआ और वहीं पर भव्य सन्त पथिक समाधि मन्दिर बना है।